श्री उमाशंकर जी हिन्दी के उदीयमान तरुण कथाकार हैं। आप उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत अपनी उत्तम कला-कृति 'नाना फड़-नवीस' के द्वारा अपनी प्रोज्ज्वल औपन्यासिक प्रतिभा का परिचय दे चुके हैं। अब पाठकों के समक्ष उनका दूसरा श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास 'पेशवा की कंचनी' प्रस्तुत हो रहा है। "इस उपन्यास में लेखक ने पेशवा बाजीराव (१७२०–४०) के राजनैतिक-युग का चित्र प्रस्तुत किया है; परन्तु यह चित्र परिपार्श्व में ही आता है। केन्द्र में रहती है बाजीराव और मस्तानी की प्रेम गाथा; जो मध्ययुगीन प्रेम-गाथाओं की भाँति नर-नारी के अप्रतिहत एवं सर्वभुक आकर्षण का सूक्ष्म रेखांकन है। इस रेखा-चित्र में जहां मस्तानी का आत्म-संयत, प्रेम संवलित, बलिदानी एवं गौरवमय चरित्र भास्वर हुआ है, वहाँ बाजीराव का अपूर्व शौर्य एवं त्याग भी प्रतिबिंबित हुआ है।" (डा० भटनागर) इसके सम्बन्ध में सत्समालोचकों का मत है कि लेखक ने ऐतिहासिक उपन्यास लेखन जैसी साहित्य की दुरुह विधा में अपूर्व सफलता प्राप्त करके ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन का अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया है।
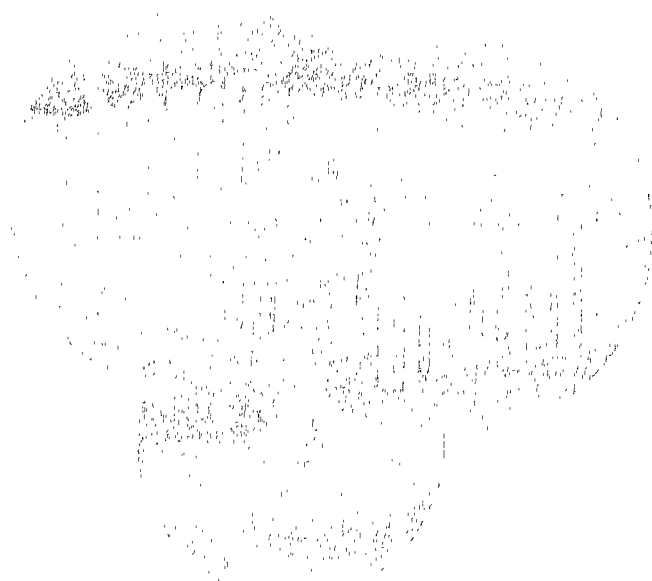
पूज्य बापू जी के कर कमलों में

—उमाशङ्कर

पेशवा की कञ्चनी

(ऐतिहासिक उपन्यास)

लेखक

श्री उमाशंकर

प्रकाशक

भारती प्रतिष्ठान कानपुर

एकाधिकारी वितरक

प्रकाशक
भारती-प्रतिष्ठान
पी० रोड, कानपुर।

लेखक
उमाशंकर

रेखा चित्रकार
डा० कुन्तलमेघ पी-एच० डी०

आवरण चित्रकार
कला-कृति
पटकापुर, कानपुर।

आवरण मुद्रक
जाब प्रेस लि०
कानपुर।

प्रकाशन काल
१९५८

मूल्य
४-१२-०

मुद्रक
शुभकामना प्रेस
कानपुर।

परिचय

बिसाजी अर्थात् बाजीराव, प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ का पुत्र था। बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के उपरान्त, बाजीराव २० वर्ष की अवस्था में छत्रपति शाहू द्वारा पेशवा घोषित हुआ। पेशवा अर्थात् पेश करने वाला।

शिवाजी ने अपने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिये विभिन्न मंत्रियों की नियुक्ति की थी जिनमें 'पेशवा' प्रधान मंत्री के रूप में समझा जाता था। उसका कार्य था प्रत्येक विषय पर छत्रपति से सलाह लेकर उसे कार्य रूप में परिणित करना। यही परम्परा बाद के छत्रपतियों ने भी अपनाई। पेशवा बाजीराव का समय सन् १७२० से सन् १७४० तक रहा।

सृष्टि का नियामक और उसके नियमों का अभी तक अनुमान नहीं लगाया जा सका है। २८अप्रैल १७४० को ४२ वर्ष की आयु में स्वर्ग-वास हो गया। होनहार को कौन रोक सकता है। पेशवा के विषय में अपनी ओर से कुछ न कहकर मैं सर रिचर्ड टेम्पल के शब्दों को यहाँ पर उद्धृत कर रहा हूं।

Sir Richard Temple—"Baji Rao was hardly to be surpassed as a rider and was everforward in action eager to expose himself under fire if the affair was ardu-

ous. He was inured to fatigue and prided himself on enduring the same hardships as his soldiers and sharing their scanty fare. He was moved by ardour for success in national undertakings by a patriotic confidence in the Hindu cause as against its enemies the Mohommedans and its new rivals the Europeans then rising above the political horizon. He lived to see the Marathas spread terror over the Indian continent from the Arabian Sea to the Bay of Bengal. He died as he llved in camp under canvas among his men and he is remembered among the Marathas as the fighting Peshwa as the incarnation of Hindu energy."

अर्थात्—बाजीराव घुड़सवारी में अद्वितीय था तथा आक्रमणों में आगे रहकर भयङ्कर से भयङ्कर स्थितियों में अपने को सदैव परखने के लिए इच्छुक रहा करता था। वह कष्ट सहिष्णु था और अपने सैनिकों के साथ आपत्तियों को झेलने में गर्व का अनुभव करता तथा भले-बुरे सब में उनके साथ हिस्सा बँटाता था। स्वदेशभक्ति भावनाओं से ओतप्रोत वह हिन्दुत्व के पुराने विरोधी मुसलमानों तथा राजनैतिक क्षितिज में उठते हुए नये बैरी अंग्रेजों पर विजय प्राप्त करना एक राष्ट्रीय कार्य समझता था। वह जीवन पर्यन्त यही कार्य करता रहा कि मराठों का अधिकार भारतीय महाद्वीप पर अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैल जाय। उसने अपना जीवन शिविर में अपने आदमियों के संग व्यतीत किया और उसकी मृत्यु भी उन्हीं के बीच हुई। वह मराठों के बीच योद्धा पेशवा के नाम से स्मरण किया जाता है तथा उसे हिन्दू शक्ति का अवतार मानते हैं।

मस्तानी की जन्म तिथि अज्ञात है।
इसके जीवन के विषय में विभिन्न किंवदन्तियाँ हैं।
कुछ का कहना है कि वह छत्रसाल की एक सुरेतिन की कोख से जन्मी थी।
कुछ का कहना है कि वह हैदराबाद की गलियों और सड़कों पर नाचती गाती पेट पाला करती थी।
कुछ का कहना है कि वह किसी मराठा सैनिक द्वारा पेशवा को भेंट स्वरूप दी गई थी।
पर इतना सभी कहते हैं कि वह रति स्वरूपा थी।
तारीख-ए-मुहम्मदशाही में जो ज़िक्र आया है मैं उसी को सत्य और उपयुक्त मानता हूं।
लिखा है—"वह एक कञ्चनी थी तलवार और बर्छा चलाने में हुनरमन्द और घुड़सवारी में होशियार थी। वह हमेशा एँड़ से एँड़ मिलाये बाजीराव के साथ लड़ाइयों में रहा करती थी।"
सर देसाई ने लिखा है—"The origin of Mastani is shrouded in obscurity. Tradition makes her the offspring of a Hindu father and a Mohammedan mother ××××. She was adept in music and gave public performances during the annual Ganpati celebrations at the Peshwa's Palace. Baji Rao was passionately attached to her and felt in her company all the inspiration of his eventful life. She dressed, talked and lived in Hindu fashion and looked afer Baji Rao's comforts with the devotion of a wife ×××. By a common consent she was known as the most charming woman of her time. ×××××× (New History of Marathas Vol. II Page 178)

अर्थात्—मस्तानी की उत्पत्ति अज्ञात है। जनश्रुति के आधार पर उसका पिता हिन्दू और माता मुस-

लमान थी। X X X X वह संगीत में निपुण थी और गणपति वार्षिकोत्सव पर पेशवा के महल में जनता के समक्ष अपना प्रदर्शन करती थी। बाजीराव को उससे अनुराग था और उसके सहवास से उसे जीवन में प्रेरणा मिलती थी। उसका पहनावा, बातचीत और रहन सहन हिन्दुओं जैसा था और एक हिन्दू पत्नी की भाँति बाजीराव के सुख ही में सुख मानती थी। X X X जन सामान्य के अनुसार वह अपने समय की अत्यन्त सुन्दरी थी। मस्तानी की मृत्यु वैसे ही हुई है जैसा आप पुस्तक में पढ़ेंगे!

उपन्यास में चिमना जी अप्पा, मुहम्मदशाह, नूरबाई और नादिरशाह ये भी तीन मुख्य ऐतिहासिक पात्र हैं। अन्ता जी अर्थात् चिमना जी अप्पा, बाजीराव का लक्ष्मण सरीखा भाई था। शरीर से दुर्बल होता हुआ भी वह एक योग्य सेनापति था। उसके जीवन में उसके भाई ही सब कुछ थे। और यही कारण था कि भाई के मरते ही आठ महीने के अन्दर अन्दर, भाई के शोक में वह इस संसार से कूच कर गया।

मुहम्मदशाह 'रंगीला' का राज्यकाल सन् १७१६ से सन् १७४८ तक रहा।

अभी तक नूरबाई के विषय में जो कुछ जानकारी प्राप्त हो सकी है वह अर्विन द्वारा लिखित 'Later Moguls' में इस प्रकार है—

"कठिन युद्धों के उपरांत विजेता को दिल बहलाने की फुर्सत मिली। नृत्य और संगीत के कार्यक्रम उसके सम्मुख प्रदर्शित किये गये। एक भारतीय नर्तकी नूरबाई द्वारा उसके सम्मान में गाये हुये गीत काव्य ने उस पर ऐसा सम्मोहन डाला कि उसने आज्ञा दी कि उसे चार हजार रुपयों पर खरीद कर फारस ले चला जाय।

नूरबाई बड़ी कठिनाई के उपरांत अपने को नादिर-
शाह की इस विशेष अनुकम्पा से बचा सकी थी।"

लाल किले से निकल भागने के उपरांत नूरबाई किधर गई और कहां गई कुछ विदित नहीं।

लुटेरा नादिरशाह काबुल, पेशावर, अटक और लाहौर पर विजय पताका फहराता हुआ ७ मार्च सन् १७३६ को दिल्ली आ पहुंचा। १० मार्च १७३६ को उसने अपने को भारत का सम्राट घोषित किया। ५० दिनों के शासन में नादिर-शाह ने जो अत्याचार और नरसंहार किया था वह आज भी हमारे आपके लिये कुछ ही दिनों की घटना प्रतीत होती है।

१ मई १७३६ को लुटेरा लौट गया। श्री अब्दुल अज़ीज़ ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'The Imperial Treasury of the Indian Moguls' में नादिरशाह की लूट का विवरण बड़े विस्तार सहित दे रखा है परन्तु सब न लिखकर केवल इतना बतला देना चाहता हूं कि जब नादिरशाह दिल्ली छोड़ कर अपने वतन को चला तो उसके पास लगभग सौ करोड़ का सोना और हीरे जवाहरात थे। साथ में मयूर सिंहासन और कोहनूर हीरा भी था।

पुस्तक में काल्पनिक पात्र एक दो हैं।
पुस्तक में आये हुये पत्रादि सब मौलिक हैं।

अब मैं दो एक अपनी बातें कहूंगा।
ऐतिहासिक उपन्यासों के लिखने का अभिप्राय होना चाहिये उस काल विशेष की धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं का सही रूप में चित्रण करना तथा मानव और मानव सम्बन्धित अन्य वस्तुओं के विकास का दिग्दर्शन और उनमें कल्पना का संतुलित प्रयोग

होना चाहिये जिससे इतिहास का भविष्य न बिगड़ सके।

श्री सर देसाई, डा० ईश्वरी प्रसाद, प्रो० लक्ष्मी कान्त जी त्रिपाठी, श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव ने पुस्तकों तथा विषय की खोजबीन में जो सहायता दी है उसके लिये मैं जितनी कृतज्ञता प्रकट करूं कम है।

ललितकला मन्दिर के प्राध्यापक श्री वृन्दावन लाल अग्रया, गौरीशंकर गोयल और पुरुषोत्तम कुमार श्रीवास्तव का सहयोग सराहनीय है। मैं इनका बड़ा आभारी हूं।

अनुज प्रेमशंकर की उत्सुकता इसके शीघ्र प्रकाशित होने में अधिक सहायक रही है।

खास बाजार, कानपुर
२०—७—५७ } उमाशंकर

: १ :

उतावले होने की जरूरत नहीं है अहमद। अभी वह अवसर आया जाता है। बहुत देर नहीं है'। वह मुसकरा रही थी।

'इधर दो चार बार तुमने शिकार क्या कर लिये जैसे तीस मार खां बन गई हो? ताने भी मारने लगी। मगर जानती नहीं मर्द-मर्द ही है और औरत-औरत। हमसे तुम्हारा क्या मुकाबला। एक चना भी कभी भाड़ फोड़ सका है'। अहमद ने रास झिटकी। घोड़ा बढ़ चला।

उसने भी घोड़े को आगे बढ़ाया। वह अब भी हंस रही थी 'आज की हारी जीवन भर की हारी मानी जायेगी न? चलते समय तुमने यही कहा था। याद है'? उसने अपने दाहिने हाथ में पकड़े हुये बर्छे को हिलाया, 'और हां, आज आखेट बरछे और तलवार से होगा। बिलकुल आमने-सामने डट कर'।

'हां-हां' बिलकुल सामने डटकर। बार-बार दुहराती क्यों हो? अंधे के हाथ बटेर लगी बन गये तीरंदाज़। पूना वालों ने ज़रा तारीफ की और दिमाग आसमान पर चढ़ गया। शर्त बद कर बार-बार दुहराते हुये खिल्ली उड़ाई जा रही है। खैर।' पच्चीस वर्षीय अहमद का सीना फूलने लगा था। उसकी दृष्टि सामने फैले जंगल में भटक रही थी।

उसने फिर चिढ़ाया। 'मर्दों की इसी कमज़ोरी ने तो उनका सत्यानाश कर दिया है। अपने को औरतों से दुर्बल समझते हुये भी ऐसा कहने में पता नहीं झेंपते क्यों हैं? सच कहने में शरमाना क्या'? उसके सुर्ख गालों पर लम्बे-लम्बे कजरारे नेत्रों ने नाच कर अहमद की ओर कनखियों से देखा। वह सामने की ओर देख रहा था। उसने आगे खोदा, 'सही-सही कहना अहमद, अभी तक जितने आखेट हुये हैं उसमें बाज़ी किसने अधिक ली है, तुमने या मैंने?'

'तुमने! तुमने!! तुमने!!! बस। लेकिन आज मेरा भी हाथ देखोगी। अगर दांतों तले उंगुलियां न दबाना पड़े तो कहना। तेंदुये का शिकार

करूंगा तेंदुये का और वह भी आमने-सामने डटकर। या तो वह अपनी जान देगा या काला मुंह करके भाग जायगा। समझीं'। अहमद गम्भीर था।

'समझ तो बहुत दिनों से रही हूं, सम्भवतः आज कुछ नया समझना पड़े। मर्दों की बात ही निराली होती है'। वह उसी प्रकार हंस रही थी।

अहमद ने टेढ़ी गर्दन करके देखा, परन्तु बोला नहीं।

वन की सघनता बढ़ने लगी थी। घोड़ों को बार-बार वृक्षों की फैली टहनियों और डालियों से बचा-बचा कर दांये मोड़ना पड़ रहा था। दोनों अब साथ-साथ नहीं, आगे-पीछे चल रहे थे। अहमद अधिक गंभीर था, किन्तु युवती की मुखाकृति पर वही विनोद की रेखायें झलक रहीं थी। वह मौन चलती हुई भी बीच-बीच में अहमद को कनखियों से देखकर उसके पुरुषत्व को चुनौती दे रही थी। केवल चिढ़ाने के लिये। अहमद का सीना फटा जा रहा था। सौन्दर्य में धृष्टता स्वाभाविक देन है, किन्तु जब उसमें योग्यता का समिश्रण हो जाता है तो पुरुष जाति के लिये इससे उत्पन्न आकर्षण से वंचित रहना दूभर ही नहीं असम्भव-सा होने लगता है; और फिर उस पुरुष के लिये तो बिल्कुल ही असम्भव है जिसकी कल्पनाओं में एक नवीनता का सृजन होने लगता हो।

दोपहर का सूरज नीचे उतरने लगा था। लताओं और वृक्षों की सघनता बढ़ती जा रही थी जिससे अंधेरा भी बढ़ रहा था। वह रास खींचती हुई बोली, 'अहमद, अब उतर कर चलो। आगे कुछ ही फासले पर सोता है। सम्भव है, तुम्हारा शिकार वहां मिल जाय'।

घोड़ों को वहीं पेड़ से बांध कर दोनों अंदर जंगल में चल पड़े। दोनों के कान सतर्क थे। पेड़ों में खड़खड़ाहट होते ही वे चौकन्ने होकर खड़े हो जाते और इधर-उधर दृष्टि गड़ा कर देख लेने के उपरान्त फिर आगे बढ़ते। सोता आ गया, परन्तु अहेर न दिखाई पड़ा। अहमद के हृदय में उठता बवंडर शिथिल पड़ने लगा। उसने चिन्तित नेत्रों से युवती को देखा। वह मुसकराई, 'सोते के किनारे-किनारे ऊपर को चलो। दांव खाली नहीं जायगा। वैसे मारने-मरने की बात तो मैं जानती नहीं'। वह खिलखिला पड़ी।

अहमद अन्दर ही अन्दर कुढ़ गया। उत्तर नहीं दिया। अपने बर्छे को संभालता हुआ ऊपर चढ़ने लगा। उसका बांया हाथ तलवार की मूठ पर था।

झाड़-झंखाड़ की अधिकाई के कारण आगे बढ़ने में कठिनाई तो अवश्य हो रही थी, किन्तु अहमद इससे विचलित नहीं हो रहा था। उसे तो आज युवती अपना जौहर दिखाना ही था। अभी वह कुछ ही दूर चल पाया होगा कि अचानक पीछे से उसके अंगरखे को खींचती हुई धीरे से बोली, 'सामने देखो अहमद! सामने'।

अहमद ठिठक कर रुक गया, सोते के उस ओर तेंदुआ पानी पी रहा था, अहमद आगे बढ़ा, वह वहीं खड़ी रह गई, झाड़ी में खड़खड़ाहट के कारण तेंदुये ने सिर उठाकर देखा और मुंह सिकोड़ा फिर बड़े-बड़े दांतों को निकाल कर गुर्राया, परन्तु तत्काल ही पीछे मुड़ कर भागना चाहता था कि एक भन्नाता हुआ बरछा उसके पुट्ठे पर फंस कर गिर पड़ा। वह तिल-मिलाया और भयंकर गर्जन के साथ उसने छलांग मारी। 'संभलना अहमद' वह चिल्लाई। अहमद विचलित होकर सतर्क हो चुका था। म्यान से तलवार निकल चुकी थी। उसने पैतरा बदला, तेंदुआ का वार खाली गया। अब अहमद की पारी थी। तलवार नाची परन्तु वह तेंदुये की कमर पर न लग कर पैर पर लगी। दाहिना पैर कट कर गिर पड़ा। तेंदुआ चिंघाड़ कर फिर झपटा। उसका रूप बड़ा भयानक हो रहा था, परन्तु अहमद में अब स्फूर्ति आ चुकी थी। उसने मंजे अहेरियों की भांति तलवार घुमा कर उसके मुँह में घुसेड़ दी। काम तमाम हो गया। विकराल की विकरालता समाप्त हो गई।

वह समीप आ चुकी थी, 'शाबाश अहमद! मारा तो खूब लेकिन जीवन भर की हारी वाली शर्त तो ज्यों-की-त्यों ही रह गई। यदि बरछा मैंने न मारा होता तो अहेर का हाथ लगना असम्भव था।'

'जिंदगी को हारने की शर्त तो न मालूम कब हार चुका हूं मस्तानी! क्या अब बार-बार हारना है। लेकिन············' अहमद के नेत्र कुछ व्यक्त कर रहे थे।

'अच्छा-अच्छा, अपने हाथ को पोंछो, लहूलुहान हो रहा है। बातें बाद में करना। मस्तानी झुक कर तेंदुये को देखने लगी।

अहमद ने साफा खोला और उसमें हाथ पोंछता हुआ विचारों में उलझ गया। सम्भवतः, उसे मस्तानी का दुबारा उसके हृदय के उद्‌गारों को हवा में उड़ाने का प्रयत्न अखर रहा था। वह मस्तानी को समझ कर भी अभी नहीं समझ पाया था। यही उसकी विशेष उलझन थी।

मस्तानी उठी 'चलो अहमद चलें। थोड़ी देर में अँधेरा हो जायेगा। इसे यहीं रहने दो। अगर पशुओं से बचा रहा तो कल तड़के उठवा लेंगे।'

अहमद मस्तानी के पीछे-पीछे चलने लगा।

: २ :

तब के पूना और आज के पूना में आकाश पाताल का अन्तर है। यह कथा उस समय की है जब पूना, मूठा और मूढ़ा नदियों के आलिंगन में खोया हुआ अपने को भूल चुका था। प्रकृति अपने नित्य शृंगार से उसे संवार-संवार कर आकर्षक बनाती रहती थी। थोड़े-से घरों में थोड़े-से लोग रहा करते थे जिनका थोड़ा-सा व्यापार था। लोग प्रसन्न थे और भरे-पूरे थे। जीवन को जीवन समझने की क्षमता थी और उसके सार्थकत्व के हेतु आये दिन विभिन्न प्रकार के साधन जुटाये जाते थे। विशेष उत्सव समारोहों पर इनके द्वारा आखेट का आयोजन भी हुआ करता था, जिसमें युवक-युवतियाँ भाग लेकर अपनी वीरता का प्रदर्शन करतीं और जीवन की नवीनता के खिंचाव को सदैव जागरूक बनाती रहतीं।

मस्तानी भी इसी भूमि की देन थी। उसकी बहादुरी की चर्चायें दूर ग्रामों में उसी प्रकार होतीं, जिस प्रकार प्राचीन पौराणिक कथाओं की। वह भाला और तलवार चलाने में अद्वितीय थी। घुड़सवारी में अभी तक कोई उसे मात नहीं दे सका था।

रूप की निधि भी उसके पास असाधारण थी जिसें देखती हुई आँखें कभी अघाती नहीं थी। पूना इन दिनों इस अट्ठारह वर्षीया बाला पर न्यौछावर हो रही थी जो सर्वथा स्वाभाविक था। यह मस्तानी की ईश्वरी और अपनी देन थी। किन्तु एक देन और थी—सामाजिक देन, जिसमें उसका पालन-पोषण हुआ था पर वह कुरूपता लिए हुये थी, समाज उसे हेय दृष्टि से देख रहा था। यद्यपि मस्तानी के द्वार से उसे ही धक्के खाकर सदैव लौटना पड़ता था फिर भी निर्लज्जों की भांति उसे पतिता कहने में वह सकुचाता नहीं। मस्तानी पातुर-पुत्री थी और उसी भाँति उसकी

शिक्षा हुई थी। वह समाज के खोखलेपन से भली-भाँति परिचित थी। इसीलिए न तो उसे हिन्दू समाज से घृणा थी और न अपने मुसलमान समाज से प्रेम। जो कुछ था, जैसा था उसके लिए सब ठीक था। अपने जीवन का मार्ग वह स्वयं बना रही थी और वही उसका अपना था। वह सीधा और सांसारिक पचड़ों से दूर था।

संध्या समय जब नूपुरों को झनकारती पतली कमर से बलखाती अपने बड़े-बड़े कजरारे नयनों को नचा नचा कर थिरकती तो उसका कक्ष वाह-वाह की ध्वनि से गुंजरित हो उठता और बैठी मण्डली नृत्य-कला से मुग्ध रूप-सम्मोहन में भ्रमित, रुपयों की वर्षा करने लगती। वह समझती हुई मन ही मन हंसती और रात्रि के द्वितीय प्रहर के आगमन के साथ-ही-साथ, समाज और धर्म के उन विशिष्ट ठेकेदारों को कक्ष के बाहर निकाल कर द्वार बन्द करा लेती। शेष रात उसकी निजी कल्पनाओं के लिए थी। इस नियम का उसने उस समय से पालन करना आरम्भ किया, जब व्यक्ति उसे मस्तानी के रूप में देखने को लालायित हो उठा था। यह थी उसकी सामाजिक देन जो उसके रूप और गुण में चार चांद लगा रहे थे बावजूद वेश्या होने के।

मस्तानी के परिवार में अब केवल उसकी मां थी। उसके पिता की मृत्यु कब हुई उसे स्मरण नहीं। मां की देख-रेख में ही उसका लालन पालन हुआ और जैसा हुआ था उसकी वह प्रत्यक्ष प्रमाण थी। मस्तानी की मां भी अपने समय की अद्भुत सुन्दरी और नृत्य के लिए विख्यात थी। कामुक तिलकधारियों की भीड़ आज की भाँति उस समय भी उसके द्वार पर हुआ करती थी, परन्तु जिस सच्चरित्रता और सम्मान से उसने अपने जीवन के दिनों को व्यतीत किया, वह हिंदू और मुसलमान दोनों समाजों के लिए एक सीख और उनके ढोंग पर कठोर व्यंग था।

सुन्दरता, मस्तानी की मां से आज दिन भी लिपटी हुई थी, परन्तु उसने सब कुछ त्याग कर अपने को भगवत्-भजन में रमा लिया था। अब मस्तानी उसके स्थान की पूर्ति कर रही थी। ठीक उन्हीं नियमों और उन्हीं मार्गों पर। हां, इतना अन्तर अवश्य था कि जहां केवल वह एक पातुर थी। वहां मस्तानी पातुर सहित एक वीर रमणी भी थी। इसका श्रेय उसकी मां को था।

जाड़े की ढलती धूप में, रेहल के सामने झुकी हुई मस्तानी की मां दास-बोध पढ़ रही थी। पैरों की आहट सुनकर उसने सिर उठाकर देखा।

सामने अहमद चला आ रहा था। अहमद के लिए उसके घर में कोई रोक-टोक नहीं थी। मस्तानी की मां अहमद को पसन्द करती थी और मस्तानी से उसकी मित्रता को भी। अहमद ने समीप आकर बड़े अदब से सलाम किया।

'अल्लाह की मेहरबानी तुम पर हमेशा बनी रहे बेटा,' उसने आशीर्वाद दिया। 'आज बड़े खुश नजर आ रहे हो।'

'तुम्हें नहीं मालूम अम्मी? जान पड़ता है मस्तानी ने बतलाया नहीं। बतलायेगी कैसे? औरतों में यही चीज तो बुरी है। अपने से अच्छा किसी को देखना चाहती ही नहीं।'

'बात क्या है?'

'बात मामूली नहीं है अम्मी जान। कल मैंने तेंदुआ मारा था आमने-सामने तलवार से लड़कर। मस्तानी कल मेरा हाथ देख कर दंग रह गयी थी। उसने......।'

'जी हाँ, क्यों नहीं। मस्तानी ने इस प्रकार के शिकार कभी थोड़े खेले हैं जो आपकी बहादुरी देखकर दंग न रह जाती।' वह आँगन के उस पार वाले कमरे से कहती चली आ रही थी। चन्द्रमा की भाँति चमकते मुख-मण्डल पर नितम्बों तक बिखरी काली-काली लटें, रूप और उसकी मादकता का प्रमाण देकर उस महान कलाकार की कला और उसकी कल्पना-वैचित्र्य की सराहना कर रही थी। वह चटाई पर आकर बैठ गई। 'मां' जरा इनसे यह तो पूछो कि प्रथम बरछा किसने मारा था। यदि......'

'बरछा मारने से क्या होता है जी। तेंदुये के वार को रोकने वाला तो मैं ही था। अम्मी जान लड़ाई मैंने लड़ी थी। तलवार उसके मुंह में मैंने घुसेड़ी थी। और......'

'ओह! बड़ा इतराव है। एक में यह हाल है। कहीं दो-चार मारे होते, तब तो श्रीमान के पैर पृथ्वी पर पड़ते ही नहीं। भगवान गंजे को...'

मस्तानी की मां ने डांटा, 'दोनों भागो तो यहाँ से। जब देखो तब तू-तू मैं-मैं। पता नहीं तुम दोनों की पैदाइश का नक्षत्र कौन था। मस्तानी, अहमद तो आता है तुझसे बातें करने और तू उससे लड़ने लगती है। चलो, उठो दोनों।'

दोनो उठकर चले गये। वह फिर पढ़ने लगी।

मकान के पीछे एक छोटा सा सहन था जिसमें सब्जियाँ बोई गई थीं तथा इधर-उधर कुछ फूलों के पौधे भी थे। दीवार के किनारे-किनारे

अमरूद के पेड़ अमरूदों के भार से झुके अपने बड़प्पन का परिचय दे रहे थे।

'चलो उधर बैठो।' अहमद ने मस्तानी का हाथ पकड़ लिया, 'तुमसे कुछ पूछना है।'

'पूछोगे क्या, अपनी शेखी बघारोगे? तुम मर्दों को इसके अतिरिक्त और कुछ भी आता है?' मस्तानी अहमद के भावों को समझ कर भी अनभिज्ञ बन रही थी। उसने धीरे से अपना हाथ छुड़ा लिया।

दोनों एक अमरूद की छाया में आकर बैठ गये। मस्तानी बालों को समेट कर जूड़ा बाँधने लगी। 'पूछो, क्या पूछ रहे थे?'

अहमद ने मस्तानी को देखना चाहा, लेकिन उसकी आँखें बहुत देर तक उसकी आँखों में न तैर सकीं। वे झुक गईं, उसे ऐसा जान पड़ा मानो जो कुछ वह कहना चाहता है कह न सकेगा। वह सब कुछ भूलने-सा लगा था। यद्यपि कल रात से उसने बड़े-बड़े मनसूबे बांधे थे। बड़ी-बड़ी कल्पनायें की थी, नई-नई बातें सोची थी, परन्तु इस समय मस्तानी के सामने सब काफूर हो रही थी। वह होलदिल हो रहा था। उसकी मनःस्थिति विचित्र थी। वह नहीं समझ पा रहा था कि जब-जब उसने मस्तानी को अकेले में पाकर कुछ कहने की इच्छा प्रकट की है तब-तब उसकी यह दशा क्यों हो जाया करती है? न मालूम यह मस्तानी के रूप का सम्मोहन था या उसके प्रेम का। क्या कहा जाय?

अहमद की झुकी दृष्टि और चेहरे पर अनायास उभरी रेखाओं से मस्तानी ने जो अनुमान लगाया, वह ठीक ही था। वह मुस्कराई, 'सम्भवतः पूछना भूल गये। क्यों?' वह हंस पड़ी।

अहमद पानी-पानी हो गया। उसने उत्तर न देकर सिर उठाकर देखा। मस्तानी के हृदय में जैसे किसी ने कुछ चुभो दिया हो। उसे दुःख हुआ अपने व्यंग पर। वह पश्चात्ताप करने लगी। 'मुझसे गलती हुई अहमद! हर समय की हंसी अच्छी नहीं होती। आगे ऐसा अवसर नहीं आने दूंगी।' वह उंगली से पृथ्वी खोदने लगी।

'मस्तानी! जीवन में हम लोग बचपन से साथ-साथ चले हैं। साथ-साथ खेले हैं। साथ-साथ बड़े हुये हैं और आज भी साथ-ही-साथ हैं। तुम्हें यह भी मालूम है कि मेरे वालिद ने बहुत चाहा कि हमारा-तुम्हारा साथ छूटे। इसमें वे अपनी बदनामी समझते थे। लेकिन उनकी तमाम कोशिश करने पर भी ऐसा न हो सका। मुहब्बत दिन पर दिन बढ़ती गई।' अहमद के कहने

में व्यथा थी। मस्तानी मौन थी। उसने आगे कहा, 'और वह यहाँ तक बढ़ी कि आज पूना का बच्चा-बच्चा समझता है कि मस्तानी के बिना अहमद की जिन्दगी नहीं के बराबर है। मेरी जिन्दगी अब तुम्हारे बिना नहीं चल सकेगी मस्तानी। हालांकि तुम इस......'

'ऐसी बात नहीं है अहमद। हृदय तो हर एक के पास है। पर इतना मैं अपने लिये अवश्य कह सकती हूं कि प्रेम क्या वस्तु है, उसे अभी समझ नहीं सकी हूं।'

'वह समझा नहीं जाता मस्तानी और न समझाया ही जा सकता है। समझने-समझाने से उसकी शक्ल दूसरी हो जाया करती है।'

'सुना मैंने भी ऐसा ही है। बड़े-बड़े कवियों और शायरों ने तो न मालूम कितनी पोथियाँ लिख डाली हैं, पर न जाने मेरे पल्ले अब तक क्यों नहीं पड़ा? समझने की बड़ी कोशिश करती हूं।'

वास्तविकता को पुनः व्यंग में परिणत होता देखकर अहमद को कुछ झुंझलाहट आ गई, 'यही आदत तुम्हारी बुरी है। हर बात को हर वक्त मजाक में टाल देना चाहती हो। बात होगी कुछ और जवाब दोगी कुछ और। इसे खिलवाड़ समझ कर टालने की कोशिश न करो। यह जिंदगी और मौत का सवाल है।'

मस्तानी हंसी परंतु वह उपहासात्मक थी। उसने अंगड़ाई ली, 'वेश्याओं के जीवन में भी प्रेम का कुछ महत्व है अहमद, मैं तो नहीं समझती। और यदि तुमने इस तरह का कोई अनुमान लगाया है तो बहुत गलत है। समाज और समाज के पिट्ठू तुम पुरुषों को सम्भवतः स्वयं भी अपने बहुरूपियेपन का ज्ञान नहीं। वेश्यायें समझती हैं मर्द बुद्धू और नासमझ हैं, परन्तु उन्हें यह नहीं दिखाई पड़ता कि पुरुषों की जाति कितनी चतुर है कि सब कुछ करती हुई भी दोषरहित मूंछें टेवती घूमती रहती है। सम्मान पर आंच नहीं आने पाती। अहमद! अभी तुमने अपने को समझा नहीं या समझते हुये भी नासमझ बनते हो। क्यों?'

आज मस्तानी के इस कथन को सुनकर अहमद चकित रह गया। उसके मर्म पर आघात पहुँचा। वह तिलमिला उठा। बाल्यकाल से साथ रहने के उपरान्त भी मस्तानी ने उसके प्रति ऐसी धारणा बना रखी है। उसने उसकी आँखों में आँखें डालकर उसके हृदय तक पहुँच कर कुछ टटोलना चाहा। 'तो बचपने से साथ रहकर तुमने मेरे बारे में यही अन्दाज़ा

लगाया है या मुझे कसौटी पर कस रही हो। जो कुछ कर रही हो ठीक ही कर रही हो। अपने लिये ज्यादा..................'

'मस्तानी, ओ मस्तानी' उसकी माँ ने पुकारा, 'शाम हो रही है बेटी, अभी..................'

'आई माँ।' वह उठ खड़ी हुई। 'चलो, चलें। कल आओगी तो और बातें होंगी। अभी तुमने मेरे भावों को समझा नहीं है।'

अहमद ने कोई उत्तर नहीं दिया। उठ खड़ा हुआ। द्वार पर पहुँचकर मस्तानी ने उससे पूछा, 'कल आओगे न? मेरी बातों का बुरा न मानना। न मालूम किस धुन में मुँह से क्या-क्या निकल जाया करता है। कल आना ज़रूर। तुम्हें मेरी क़सम।'

अहमद दरवाजे के बाहर हो गया।

अहमद बाप का अकेला लड़का है। कुछ दिन पहले उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी। वह पूना में रेशम और कलाबत्तू का प्रसिद्ध व्यापारी था। मृत्यु के पश्चात अहमद ने उस कारबार को सँभाला ही नहीं वरन् उसकी उन्नति भी की। इस समय उसकी पद-प्रतिष्ठा में चार चाँद लग रहे थे।

: ३ :

औरंगजेब ने जिस अनाचार और अत्याचार से मुगलिया सल्तनत को हथिया कर इस्लाम की बुलन्दी के लिए अपने बाप शाहजहाँ तथा दाराशिकोह ऐसे योग्य भाई को मरवाया था, वही मुगल साम्राज्य उसके मरते ही तिनकों के ढेर की तरह छिन्नभिन्न हो गया। यद्यपि समय-समय पर कुछ महापुरुषों ने देश के रक्षार्थ अपने वीरत्व का परिचय देकर उनका सामना किया और उनके बढ़ते हुए अनाचार को कुछ समय के लिए शिथिल भी बना दिया था, किन्तु स्थायी प्रभाव कुछ नहीं हुआ। परन्तु, दुर्भाग्यवश इन महापुरुषों का जीवन-काल बहुत थोड़ा रहा है और उस थोड़े से समय में उन्होंने राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में जो कुछ प्राप्त किया, वह नहीं के बराबर ही

कहा जा सकता है; पर जहां तक मानसिक शक्तियों का सम्बन्ध है, वह सदैव बलवती होती गई। कर्तव्य परायणता लुप्त न हो सकी। आशा उनकी सहचरी बनकर उनके विश्वास में परिक्रमा लगाती गई कि एक-न-एक दिन उनके राम-कृष्ण का देश इन आततायियों के आतङ्क से मुक्त होगा और घर घर में फिर घण्टे और घड़ियाल बज उठेंगे।

महाराष्ट्र धर्म के रक्षार्थ छत्रपति शिवाजी ने सारे महाराष्ट्र में जिस स्वराज्य की भावना को जाग्रत किया तथा जिस भावना के बल पर सारे मराठे एकता के सूत्र में बँधकर उनके नेतृत्व में औरंगजेब जैसे शक्तिशाली सम्राट को नाकों चने चबवा दिये थे, उन्हीं छत्रपति की असमय मृत्यु हो जाने के कारण मराठों का बना-बनाया काम बिगड़ गया। औरंगजेब को दम मारने की फ़ुर्सत मिली। उसके नये मन्सूबे जागे। उसने मराठों को पूर्णतः कुचल कर अपने सिर दर्द को मिटा डालने की ठानी। विकट युद्ध के उपरान्त रायगढ़ पर चांद-तारों वाला झण्डा लहराया और शिवाजी के पुत्र शम्भूजी बन्दी बनाये गये। उन्हें नंगा करवा कर कालिख पोती गई। फिर ऊँट पर बैठाकर तुलापुर की प्रत्येक गली और सड़क पर घुमाया गया। तत्पश्चात वे भरे दरबार में औरंगजेब के सामने लाये गये। सम्राट हँसता हुआ गर्व सहित खड़ा होकर बोला, 'यह है शिवा का लड़का शम्भू, हिन्दू धर्म को बचाने वाला, काफिर!' उसने शम्भू जी को घूरा।

शम्भू जी के चेहरे पर सदैव की भांति उस समय भी प्रसन्नता झलक रही थी। वे मुसकराये, 'बैठ जाओ औरंगजेब बैठ जाओ, मैं तुमसे प्रसन्न हूं। आज दिन भी तुम हमारे सम्मान में इस प्रकार खड़े होकर स्वागत करते हो, यह तुम्हारे तहजीब की बड़ाई है।' शम्भू जी ठट्ठा मारकर हँस पड़े 'खोदा अपने इस्लाम को बदनाम............'

औरंगजेब चिल्लाया, 'काट लो सिर!' शम्भू जी का सिर धड़ से अलग कर दिया गया।

शम्भू जी का लड़का शाहू, जो इस समय सात वर्ष का था, बन्दी बना लिया गया। औरंगजेब की दमननीति उसी प्रकार चलती रही, परन्तु मराठे कब दबने वाले थे। यद्यपि संगठित रूप से अब वे विरोध तो नहीं कर पा रहे थे, पर आये दिन उनकी यवनों से छुटपुट भिड़ंत होती रही। इसी बीच २० फरवरी, सन् १७०७ को औरंगजेब का देहान्त हो गया। घायल और पीड़ित हिन्दुस्तान ने करवट बदली। एक नवीन आशा देश के इस कोने से उस कोने तक लहर उठी। सिक्ख सँभले, राजपूतों में चेतना आई, मराठों को तो

जैसे सब कुछ मिल गया हो। नवीन सम्राट फर्रुखसियर घबड़ाया। शाहू अट्ठारह वर्ष बाद मुक्त किये गये। फर्रुखसियर उनके द्वारा अपनी स्वार्थ साधना का प्रयत्न करने लगा।

शाहू का मुक्त होना शिवा जी के स्वराज्य की पुनर्स्थापना थी। मराठे संगठित होकर भगवे झंडे के नीचे आये और फिर महाराष्ट्र देश के हितार्थ कटिबद्ध हो गये। एक बार फिर 'हर हर महादेव' की ध्वनि से नभमण्डल गुञ्जरित हो उठा, और मराठों की सेना प्रत्यासार करती हुई धावे पर धावे बोलने लगी। सतारा राजधानी बनी और शाहू की राज्य-सीमा विस्तृत होने लगी। शाहू के प्रथम पेशवा बाला जी विश्वनाथ ने जिस कार्य-कुशलता और दृढ़ता से मराठा राज्य की नींव को सुदृढ़ बनाकर विस्तार किया, वह उस समय की परिस्थिति को देखते हुए अनहोनी को होनी करना था। परन्तु दुर्भाग्यवश उनकी भी असमय मृत्यु हो गई। तब उनके बाईस वर्षीय पुत्र बाजीराव को शाहू ने पेशवा घोषित किया।

यदि महाराष्ट्र ने शिवा जी के बाद उनके जैसा दूरदर्शक, योग्य और वीर सेनापति को जन्म दिया था तो वह था बाजीराव। उस युवक ने पेशवा बनते ही भरे दरबार में दहाड़ कर घोषणा की, 'छत्रपति शाहू महाराज, सामन्त सरदारों तथा आदरणीय सभासदों! समर्थ गुरु रामदास के कथनः—

आहे तितुके जतन करावें। पुढें आणिक मेलवावें।
महाराष्ट्र राज्य चिकरावें। जिकडे तिकडे।*

की पूर्ति का समय आ गया है। थोड़े परिश्रम और त्याग से अपनी पद पादशाही की स्थापना की जा सकती है। मिले हुए अवसर से लाभ उठाना सफलता को प्राप्त करना है। जिस समय छत्रपति शिवा जी महाराज ने स्वराज्य की लड़ाई के लिए प्रयत्न किया, वह समय अत्यन्त विकट और आपत्तियों से परिपूर्ण था, परन्तु आज हमारी परिस्थिति उस समय की अपेक्षा अधिक अनुकूल है। अब हमें बिना भय के उत्तर भारत में युद्ध ठान कर छत्रपति महाराज के राज्य का विस्तार करना है। मुझे पूर्ण भरोसा है कि हमारी संगठित शक्ति निज़ामुल-मुल्क, मुहम्मद खाँ बंगश तथा अन्य सेनापतियों को चुटकी बजाकर पराजित कर सकेगी। पर सर्वप्रथम हमें निज़ाम के विरोध को नष्ट करना होगा, क्योंकि यवनों में सबसे योग्य सेनापति और कूट नीति में पारंगत वही है।'

* जो कुछ तुम्हारे पास है उसे बचाओ और उसकी वृद्धि के लिये प्रयत्न करो, सब ओर महाराष्ट्र साम्राज्य का प्रसार करो।

उसने शाहू की ओर देखकर आगे कहा 'यद्यपि महाराज के सामने दावे के साथ यह तो नहीं कह सकता कि इस बड़े पद के भार को मैं जीवन-पर्यन्त सफलता पूर्वक निभाता हुआ उत्तरोत्तर उन्नति की ओर अग्रसर होता ही रहूंगा, किन्तु इतना मैं महाराज से शपथ पूर्वक कह सकता हूं कि जिस पेशवाई पद से महाराज ने मुझे विभूषित किया है, उसके कर्तव्यों की पूर्ति के हेतु यदि जीवन की बाजी भी लगाना पड़े, तो मुझे उसके सोचने के लिए समय की आवश्यकता नहीं होगी। और कदाचित मैं अपने कर्तव्य-पथ से विचलित हुआ, तो मुझे उसी समय इस पद से वंचित किया जा सकता है।'
वह रुका, 'अब मैं केवल महाराज से याचना करूंगा कि वे मुझे शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध की आज्ञा दें और देखें कि उनके आशीर्वाद से मैं क्या से क्या कर डालता हूं। मैंने अपनी तलवार शत्रुओं की तलवार से नाप ली है। आशा है, महाराज आज्ञा देकर मुझे सेवा करने का अवसर देंगे।'

सारा दरबार युवक पेशवा को देखता रह गया। शाहू ने पेशवा की पीठ ठोंकी, 'बाजीराव मुझे उम्मीद है कि तुम अपनी सेवाओं द्वारा अपनी और अपने देश की उन्नति तो करोगे ही, साथ ही अपने पूर्वजों की कीर्ति को अमरत्व प्रदान करने में विशेष उल्लेखनीय होंगे। मैं तुम्हारी सेवाओं से प्रसन्न होऊँगा।'

पेशवा नत मस्तक था।

: ४ :

पूना के साहूकारों और धनीमानी व्यक्तियों और सामान्य जनता की ओर से नाना प्रकार की वस्तुओं का प्रबन्ध हो रहा है। वे आपस में होड़ लगाकर एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाह रहे हैं। आज उस छोटी सी नगरी में प्रसन्नता बिखरी पड़ रही है। हर जगह एक ही चर्चा है। पूना के बाहर पड़ाव का लगभग सारा प्रबन्ध किया जा चुका है। पेशवा बाजीराव संध्या तक अपनी सेना सहित आ जायेगा और दो दिन यहाँ रुक कर वह उत्तर भारत की ओर प्रस्थान करेगा। उसने जो बीड़ा उठाया है, उसे शीघ्र-से शीघ्र पूरा करना है।

अँधेरा होने के पहले-पहले बाजीराव ससैन्य आ पहुंचा। स्वागतार्थ जो विभिन्न प्रकार का आयोजन था, वह कार्यान्वित किया गया। जिन लोगों ने पहले कभी बाजीराव को नहीं देखा था, वे देखकर धन्य हो रहे थे। पेशवा भी प्रसन्न था। मिलने-मिलाने के उपरान्त लोगों ने नजरें दीं और यह कार्यक्रम बड़ी रात तक चलता रहा।

प्रातःकाल का चढ़ता सूर्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था जब बाजीराव ने सेना गोपों सहित अपने घोड़े को अहेर के हेतु जंगल की ओर मोड़ा। कमर में लटकती तलवारें और रकाब के सहारे सबके हाथों में स्थित उनके लम्बे-लम्बे भालों की नुकीली नोकें सूर्य की रश्मियों से सम्बन्ध जोड़कर चकाचौंध उत्पन्न करने लगी थीं। घोड़े उड़ते चले जा रहे थे। वन की सघनता जब कुछ अधिक होकर घनघोरता में परिणत होने को आई तो पेशवा ने घोड़ा रोका। सब रुक गये।

पेशवा बोला 'आज सब लोग अलग-अलग शिकार करेंगे। देखना है कौन क्या-क्या लाता है?'

'किन्तु आप······' एक ने विनती की।

'चिन्ता करने की बात नहीं। जाओ, आखेट के उपरान्त सब यहीं एकत्रित होंगे'। उसने एक ओर अपने घोड़े को मोड़ लिया।

कुछ दूर आगे जाने पर बाजीराव को गुर्राहट सुनाई दी और बांयी ओर की झाड़ी से एक चीता निकल कर आगे को बढ़ा। बाजीराव को जितना भरोसा अपनी तलवार पर था, उतना ही भाले पर। उसका निशाना अचूक था। उसने तुरन्त निशाना साधकर भाला फेंका। समय की बात वार चूक गया। भाला उस हिंसक पशु के पेट में न लग कर पीठ के पिछले भाग की ऊपरी खाल को नोचता आगे जा गिरा। चीता तड़पा। वृक्षों में कपकपी आ गई। वह उछला। बाजीराव के पास अब संभलने का समय नहीं था, परन्तु अचानक दाहिनी ओर से एक भनभनाता भाला उस विकराल पशु के पेट में धंस कर लटक गया। उड़ते चीते को पृथ्वी थामनी पड़ी, लेकिन उसके क्रोध ने और भयानक रूप धारण किया। वह बाजीराव को भूल कर दूसरी ओर जिधर से भाला आया था प्रलयंकारी गर्जन सहित झपटा।

बाजीराव को अवसर मिला। तलवार म्यान से निकाली और घोड़े से कूद कर उधर को दौड़ा। परन्तु उसके पहुँचने के पूर्व ही चीते का काम तमाम हो चुका था। अहेरी का दाहिना हाथ तलवार सहित चीता के मुह में था, और शिथिल पड़ता हुआ वह भीमकाय पशु लड़खड़ा रहा था।

अहेरी ने झटका दिया। चीता गिर कर निर्जीव हो गया। बाजीराव ने उछल कर उसकी पीठ ठोंकी, 'शाबाश बहादुर! यह उम्र और इस प्रकार का भयंकर आखेट। धन्य हैं तुम्हारे माता पिता। रहते यहीं पूना में हो'।

युवक अहेरी ने कोई न उत्तर दिया। अपने हाथ को देखता रहा। कई स्थानों पर दांत लग जाने के कारण लहूलुहान हो रहा था। पर संभवत: किसी दुविधा के कारण वह अपना साफा खोलने में असमर्थ था। इसके पहले कि वह किसी निष्कर्ष पर पहुँचे पेशवा ने सर्र से अपना साफा खींच कर फाड़ डाला और उसका हाथ पोछने लगा।

पेशवा का चेहरा-मोहरा, उसकी सुन्दरता और वेशभूषा से उस अहेरी को यह अनुमान लगते देर न लगी कि यह व्यक्ति किसी असाधारण परिवार से सम्बन्ध रखता है। उसने धन्यवाद देते हुये पूंछा, 'आप शायद पेशवा साहब की सेना के साथ-साथ हैं?' उसका अनुमान था।

'यही समझ लो।' बाजीराव के होठों पर एक मुसकान की रेखा झलक कर ओझल हो गई। वह पट्टी उसके हाथ में बांध चुका था, 'किन्तु युवक तुम्हारे हाथ तो बिल्कुल स्त्रियों जैसे हैं। इन हाथों से ऐसे आखेट? रहते यहीं पूना में हो?' पेशवा ने उसके मुंह को निहारा।

अहेरी की आंखें झेंप गईं। फिर भी अपने को संभाल कर शीघ्रता से बोला, 'जी हां। इसी पूना में। आप का घोड़ा उधर है? चलिये। मैं अपना लेकर आता हूं,' वह पीछे मुड़ गया।

जब दोनों घोड़े पर बैठ कर चले तो युवक अहेरी ने पूंछा, 'मैंने सुना है श्री मान् पेशवा बाजीराव साहब शिकार बहुत अच्छा खेलते हैं? आप लोगों ने तो देखा होगा?' उसके पूंछने में विशेष अर्थ था।

'तुमने किससे सुना?'

'लोगों से। मेरी मां भी कहती थीं।'

'हां खेलते तो हैं, लेकिन आज तुम्हारा आखेट देखकर मुझे विदित हो गया कि पेशवा साहब से भी अच्छे शिकारी वर्तमान हैं। तुम्हारा आखेट पेशवा साहब से कई गुना अच्छा और कलात्मक है। तुमसे उनकी तुलना नहीं की जा सकती। तुम······।'

युवक हंस पड़ा, 'आपने भी खूब कहा। मुझे तो आप आसमान पर चढ़ाये दे रहे हैं। कहां राजा भोज और कहां गंगवा तेली? आकाश पाताल का अन्तर है। श्रीमन्त की बराबरी मैं क्या कर सकता हूं। मैं तो केवल

उनके आखेट देखने के विचार से आया था, परन्तु दुर्भाग्य-वश वह भी न हुआ।'

बाजीराव ने गर्दन मोड़ी। युवक के गर्वान्वित चेहरे पर हंसी खेल रही थी। पेशवा को भला लगा। उसे बहादुरों को बहादुर कहने में संकोच नहीं था। उसने पूंछा, 'तो तुम पेशवा साहब को परखने आये थे? अच्छा, अगर थोड़ी देर के लिये मैं ही पेशवा हो जाऊं तब तुम्हें विश्वास हो जायेगा कि मुझसे तुम योग्य अहेरी हो?'

उसके मुंह बात यों ही निकल गई, 'हां, तब क्यों नहीं होगा।'

पेशवा मुसकराया, 'मेरा ही नाम बाजीराव है युवक! मैं ही पेशवा हूं। तुम्हारी वीरता सराहनीय है। तुम ऐसे बहादुरों की आज देश को आवश्यकता है। मैं चाहूंगा कि तुम मेरी सेना में सम्मिलित होकर देश, धर्म, जाति सबकी कीर्ति बढ़ाओ।'

युवक अहेरी झट से कूदकर नीचे आ गया। उसका मस्तक नत था, 'मैं महाराज को अपने साथ देखकर धन्य हुआ। यदि मुझसे······।'

पेशवा ने उसके हाथ को पकड़ कर उठाया, 'आओ बैठो।' युवक का सारा शरीर सिहर उठा, 'तुमने मेरी प्राण रक्षा कर के मुझे नवीन जीवन दिया है। मैं चाहूंगा कि तुम सेना में किसी भी पद को ग्रहण करके अपने वीरत्व से बैरियों के दांत खट्टे करो। यह मेरी कल्पना नहीं हार्दिक इच्छा है।'

युवक अहेरी के विचारों में खलबली मच गई। क्या कहे क्या न कहे। पेशवा की बात टाली नहीं जा सकती थी और इस समय अपना रहस्य भी खोला नहीं जा सकता था। वह बड़े उधेड़बुन में पड़ गया।

पेशवा को समझते देर न लगी कि किसी विशेष कारण वश युवक को 'हां' कहने में संकोच हो रहा है। उसने उसकी उलझन दूर की, 'सोच लो युवक। अभी जल्दी नहीं है। जाओ। मैं इधर से जाऊंगा।' पेशवा ने घोड़ा मोड़ लिया।

अहेरी ओझल होते हुये पेशवा को तब तक देखता रहा, जब तक उसकी आंखे देख सकती थीं। तब उसने एक आह खींची और पूना की ओर चल पड़ा।

* * * *

युवक वेशधारी मस्तानी अपनी मां के गले से लिपट कर झूम उठी उसका रोम-रोम नाच रहा था। उसके आनन्द का ठिकाना न था। 'मां, आज मैंने सब कुछ कर दिया। अगर तुमने ......।'

'अच्छा', उसने बीच में काटा 'पहले कपड़े बदल आ उसके बाद बातें करना। तेरा तो नित्य का यह काम है। कोई नई बात नहीं।'

'बिल्कुल नई बात है मां। सुनकर दंग रह जाओगी।' वह उसके गले से उसी प्रकार लिपटी हुई थी।

बुढ़िया, मस्तानी के हाथों को गले से हटाने लगी 'मुझे तेरी नई बातें सब मालूम हैं। पहले कपड़े बदल आ, फिर सुनाना। 'अरे!' उसकी दृष्टि पट्टी बंधे हाथ पर गई—'यह क्या?'

कुछ नहीं, उसने शीघ्रता से हाथ छुड़ा लिया। 'दो एक दांत लग गये हैं। अभी कपड़े बदल कर आती हूं तो बतलाऊंगी। वह भागती अन्दर चली गई।

वह कपड़े बदल कर शीघ्र लौटी। मां के सामने बैठते ही बोली 'आज मैंने पेशवा साहब की जान बचाई है मां। यदि मेरे पहुँचने में क्षणभर का विलम्ब हो जाता तो शायद श्री मन्त जीवन से हाथ धो बैठे होते।

'पेशवा बाजीराव!' बुढ़िया ने विस्फारित नेत्रों से अपनी पुत्री को देखा।

'हां हां। पेशवा बाजीराव।' तब उसने आदि से अन्त तक सारी कहानी सुना दी। मस्तानी कहते कहते फूली नहीं समा रही थी। वह आगे बोली 'और अगर, कहीं मां उनको यह विदित हो जाता कि मैं लड़की हूं तब तो न मालूम वे मेरे लिये क्या क्या कर बैठते।'

'लड़की होने से क्या होता है मस्तो। खून तो राजपूत का है। तेरे बाबू भी ऐसे ही दिलेर और बहादुर थे। उनकी बहादुरी का ढिंढोरा कहां नहीं पिटा था। जब वे तलवार लेकर मैदान में उतर पड़ते तो भगदड़ मच जाया करती थी। बैरी उसके नाम को सुन कर थर्रा उठते थे। यदि गणपति ने चाहा तो एक दिन तू भी वैसे ही चमकेगी।'

मस्तानी ने कुछ सोच कर पूंछा 'बापू से तुम्हारा ब्याह होते ही उनके परिवार वालों ने उन्हे त्याग दिया होगा न मां?' मस्तानी ने आज प्रथम बार अपनी मां से उसके जीवन इतिहास जानने की इच्छा प्रकट की थी।

'मेरे ब्याह की बड़ी लम्बी कहानी है बेटी। बड़े बड़े बावले हुये। बड़ी बड़ी बातें हुईं लेकिन तुम्हारे पिता अपनी बातों पर सदैव अटल बने रहे।

उनके नाते रिश्तेदारों का कहना था कि मुझे वे ब्याहता के रूप में न रख कर एक रखैल की भांति रखें। इस तरह वे अपनी जाति-धर्म को भी बचा लेंगे और मैं भी उनके पास बनी रहूंगी। पर उनका कहना था कि ब्याह मनुष्य एक बार करता है, एक स्त्री से करता है और वह जीवन भर का नाता होता है। मैं कामुक नहीं हूं। मैं ने जिसको चाहा है, वही मेरी स्त्री होगी और ब्याहता होगी। यही उनका अन्तिम निर्णय था, और इस निर्णय को उन्होंने जीवन भर निभाया भी। इसलिये शादी के कुछ ही दिनों बाद हम लोग रायपुर से दिल्ली चले गये। उन्होंने सब कुछ त्याग दिया।'

'और दिल्ली में उनकी मृत्यु हो गई?'

'मृत्यु नहीं, वे धोखे से मार डाले गये।' बुढ़िया की आंखे डबडबा आईं।

'मार डाले गये! क्यों?'

'दिल्ली में मेरा एक ममेरा भाई रहता था। बदमाश······शैतान····· अल्लाह उसका फैसला करेगा। उसने मुझे पाने के लिये उनके साथ विश्वासघात किया और उन्हें ज़हर दे दिया।' उसका गला भर आया, 'मैं उसकी नियत समझ गई थी, इसलिये एक रात दिल्ली से भाग खड़ी हुई। मुझे उनकी मुहब्बत को पाक रखना था बेटी, दुनियाँ में इससे बड़ी दूसरी चीज़ नहीं है। वर्षों मैं इस मुहब्बत की धरोहर को एक जगह से दूसरी जगह और दूसरी जगह से तीसरी जगह लिये मारी-मारी फिरती रही और अन्त में पूना आकर बस गई। तभी से मैं यहां हूं। आज भी मेरी धरोहर उसी प्रकार मेरे पास हिफाज़त से है। औरतों की ज़िन्दगी में यही एक चीज़ है बेटी, जिसे वह हिफाज़त से रख सकती है। और जो नहीं रख पातीं, वे औरतों के रूप में पशु हैं। और पशुओं के साथ जैसा इन्सान का बर्ताव होना चाहिये, अगर वैसा है तो बुरा नहीं।' उसके कहने में अर्थ था। मस्तानी समझ रही थी।

'गाने बजाने का काम तो तुमने यहीं शुरू किया होगा?'

'क्या करती, पेट भरने के लिये कुछ न कुछ तो करना ही था। दूसरे के साथ जा नहीं सकती थी। और कोई साधन था नहीं, मजबूरन यही करना पड़ा। दूसरों की निगाहों में यह काम बुरा है। हुआ करे लेकिन मैं समझती हूं यहां आने वाले बुरे हैं। धन्धा नहीं। बस यही ध्यान रख कर मैं इस पेशे को करती हूं और अब तुमसे भी करा रही हूं। भरोसा अपना होना चाहिये दूसरों का नहीं।'

खिदमदगार लटकते झाड़ों में बत्ती जला चुका था। मस्तानी की मां उठ खड़ी हुई 'चलो, तुम्हारे हाथ पर मलहम लगा दूं। तुमने पेशवा की जान बचाकर आज अपने बाप के नाम को रोशन तो कर ही दिया है, साथ ही मेरा भी जीवन सार्थक हो गया।'

मस्तानी फूली नहीं समा रही थी।

: ५ :

कल से मस्तानी की कल्पनाओं की लड़ियाँ टूटती ही नहीं थीं। उसके मस्तिष्क में विचारों का बवंडर उठ खड़ा हुआ था। क्या सोचती है और उन्हें कहां तक समझती है, यह तो मानो उसके सामने प्रश्न ही नहीं—बस सोचना है, इसलिए सोच रही थी और सोचती भी थी, नवीन नवीन बातें जिनका न ओर था न छोर। कहाँ बाजीराव पेशवा और कहाँ मस्तानी! एक हिन्दू और हिन्दुओं में श्रेष्ठ ब्राह्मण। दूसरी मुसलमान और मुसलमानों में पतिता वेश्या। चन्द्रमा और चन्द्रमा की आभा में टिमटिमाता हुआ एक तारा। किन्तु ख्याली पुलाव पकाने के लिए कौन किसे मना कर सकता है? सोचने का अधिकार सबको है और सब कुछ है। दिल-दिमाग तो दुनियाँ में सबको प्राप्त है।

अकेला जीवन यों भी कल्पनाओं का जीवन है और अकस्मात कहीं उसमें सहारे का अंकुर फूट पड़ा, तब तो जमीन-आसमान के कुलाबे मिलने लगते हैं। वही दशा मस्तानी की हो रही थी। जब देखो, तब कुछ न कुछ सोचा ही करती।

संध्या होने को आई अभी तक वह कमरे में बैठी कल्पनाओं में मँडरा रही थी कि बाहर किसी के खाँसने की आवाज आई। उसने सिर उठाकर देखा। अहमद चला आ रहा था। 'खूब आये' वह चिल्ला पड़ी 'अभी तुम्हारे यहाँ किसी को भेजने ही वाली थी। इधर हफ्तों से तुम्हारा कुछ पता नहीं? नाराज तो नहीं हो गये? कल का हाल तो तुम्हें मालूम न होगा? होते तो देखते कि मस्तानी के आखेट और तुम्हारे आखेट में कितना अन्तर है!

उस दिन तुम तेंदुए पर फूले नहीं समा रहे थे और कल मैंने चीता का अहेर किया और साथ ही पेशवा साहब की जान भी बचाई।' मस्तानी सब कुछ एक साथ कह डालना चाहती थी।

'कौन! बाजीराव पेशवा!! तुम्हारी कहाँ भेंट हो गई?'

'होनी थी सो हो गई। या यों समझो जान बचनी थी सो बच गई।'

'अच्छा बात क्या हुई?'

'बात बहुत सीधी है। चीता निकला। उन्होंने भाले को साध कर फेंका। किसी कारणवश वार खाली गया। चीता झपटा। मैं दूसरी ओर ओट से सब देख रही थी। चीते का छलाँग भरना था कि मेरा भाला उसके ऊपर पड़ा और वह घूमकर मेरी ओर झपटा। मैं तो तैयार थी ही मुझे काम तमाम करते कितनी देर लगती। पलक मारते-मारते चीते के मुँह में मेरी तलवार जा घुसी। चीता सचेत से अचेत हो गया।'

'बाजीराव तो देख कर दंग रह गये होंगे? एक लड़की......'

'हाँ, तब शायद अधिक अचम्भा होता किन्तु मैं मर्दाने वेश में थी। फिर भी वे बड़े प्रसन्न थे। मुझसे बार-बार सेना में सम्मिलित होने के लिये कहते रहे, पर उन बेचारे को क्या विदित कि लड़के के रूप में यह कोई लड़की है।'

दोनों हँसने लगे, 'तो तुमने पेशवा को खूब बुद्धू बनाया।' अहमद फिर हँसने लगा।

'बुद्धू क्या बनाया, अपनी कलई न खुल जाती। तब वे मुझे बुद्धू बनाने लगते।'

'बुद्धू तो नहीं लेकिन कुछ और जरूर बना लेते।'

मस्तानी ने नेत्रों को नचाया, 'चलो, तुम अन्तर्यामी ठहरे जो सबके मन की बातें जान लेते हो।'

'इसमें जानने न जानने की कौन सी बात? अल्लाह ताला ने खूबसूरती इसीलिये बनाई है न कि आदमी देखकर उसकी तारीफ करे और उसे हासिल करने की कोशिश करे।' अहमद मुसकरा रहा था।

'तुमने तो पेशवा साहब को देखा होगा अहमद!' मस्तानी ने बात के क्रम को बदला, 'वास्तव में वे पेशवा होने योग्य हैं। बहादुरी तो उनके अंगों से यों ही फूटी पड़ती है। ईश्वर ने चाहा तो बहुत जल्द अपने उठाये बीड़े में वे सफलता प्राप्त कर लेंगे।'

'तुम्हें मालूम है उन्होंने क्या बीड़ा उठाया है?' अहमद ने मस्तानी

को ध्यान से देखा।'

'भली भाँति। उनका कहना है कि अत्याचारी और धर्मान्ध मुगलों का नाश करके देश में शान्ति स्थापित की जाय।'

'तब तुम्हें नहीं मालूम। उन्हें हम मुसलमानों से नफरत है और वे बदला लेने के ख्याल से मुसलमानों के खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाना चाहते हैं। तुम्हें हिन्दुओं की चालाकी का क्या इल्म ?'

'यह बात गलत है यदि उन्हें ऐसा करना होता तो वे सीधे बादशाह सलामत से लड़ाई न ठानते। निजाम से युद्ध करने की क्या आवश्यकता थी, रियाया को ही कत्ल कर देते।'

'दिल्ली पर भी धावा होगा मस्तानी। पहला दुश्मन तो निजाम है और बिलकुल बगल का है। उसे खत्म करके ही आगे बढ़ा जा सकता है। दिल्ली को लेना खिलवाड़ नहीं। उसके लिए ताकत चाहिए ताकत! उसके बाद देखना मुसलमानों की क्या दुर्दशा होती है।'

'दुर्दशा क्या होगी ? मुझे विश्वास नहीं कि पेशवा साहब के द्वारा इस प्रकार के नीच कार्य होंगे। और अगर थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय हुआ भी तो बुरा क्या है ? मुसलमानों ने क्या कुछ उठा रखा था या अब उठा रहे हैं। उन्होंने क्या नहीं किया। माँ तो बताती है कि आलमगीर के अत्याचारों से सारा हिन्दुस्थान कराह उठा था। फिर हिन्दू आज शक्तिशाली बन कर तुम्हें मिटाने को सोचते हैं तो क्या गलत करते हैं ? इन्साफ की कसौटी पर तो उन्हें ऐसा करना ही चाहिए।'

'उन्हें ऐसा करना चाहिए।' अहमद के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'क्यों नहीं करना चाहिए ? इसमें आश्चर्य की क्या बात। हिन्दुस्तान उनका है। सम्पत्ति उनकी है। तुमने तो इन्हें आपसी फूट से धर दबाया था पर अब जब उनकी शक्ति बढ़ रही है तो वे जो कुछ भी तुम्हारे साथ करें सब थोड़ा है।'

'मस्तानी' ! अहमद उसकी बातों से चिढ़ता जा रहा था 'कुफ्र' न बको वरना रसूलेपाक के सामने जवाब देते न बनेगा। काफिरों के हक में बोलना भी गुनाह कहा गया है। इस्लाम इसे माफ नहीं करता।'

मस्तानी हँस पड़ी, 'इस्लाम को तुमने समझा भी है अहमद या यों ही बके जा रहे हो। पहले समझने का प्रयत्न करो। नासमझ न बनो। आलमगीर

की इसी नासमझी का परिणाम है कि आज तुम्हें हिन्दुओं का डर खाये जा रहा है। धर्म की ओट में द्वेष की भावना फैलाकर सत्यानाश की ओर न बढ़ो अहमद! जहाँ हो, जिस मिट्टी में पले हो उसकी बातें करो फिजूल बातों से कोई लाभ नहीं। हिन्दू और मुसलमान दोनों इसी मिट्टी के हैं।'

'मैं समझा' अहमद के शब्दों में भारीपन था 'पेशवा के रूप ने ऐसा जादू किया कि तुम अपना पराया तक भूल गईं। आलमगीर औरंगजेब को नासमझ और इस्लाम को गलत बताने लगी।'

'ऐसा होना कोई बड़ी बात नहीं है अहमद! पेशवा साहब ऐसे सुन्दर पुरुष को ओर किसी स्त्री का आकर्षित होना अचम्भा नहीं है। तुमने तो उनको देखा ही होगा।'

मस्तानी के अन्तिम वाक्य से अहमद तिलमिला उठा, 'क्यों नहीं देखा है। उन्हें भी देखा है और आज तुम्हें भी देख रहा हूं। लेकिन मैं कहे देता हूं कि हिन्दू किसीके होते नहीं, अन्त में पछताओगी, उसका हृदय फट रहा था। जिस वस्तु की प्राप्ति के हेतु उसने वर्षों केवल प्रतीक्षा में व्यतीत किये थे। आज वही उसके सामने दूसरे के अधिकार में चली जाय, क्या यह सहन करने वाली बात थी।'

'हिन्दू मेरे बाबू भी थे अहमद! उनकी कहानी तुम्हें मालूम है न? हम मुसलमानों से हिन्दू कहीं विश्वसनीय हैं। जो कहते हैं, उसे जीवन-पर्यन्त निभाते भी हैं। बात कहकर उन्हें मुकरना नहीं आता और अगर आता होता, तो सम्भवतः यवन इस देश में कभी घुस न सके होते।'

अहमद को अब लेशमात्र भी सन्देह न रहा कि मस्तानी पर पेशवा का रंग चढ़ गया है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं था कि वह जिस पर आसक्त थी वह भी उसी का हो जायेगा। किन्तु अहमद इसे कब सहन कर सकता था कि वह जिस को सदैव अपनी समझता रहा है, जिसे अपनी कल्पनाओं में बनाता और सवाँरता रहा है, वही किसी दूसरे को अपनी कल्पनाओं में सजावे। उसके लिये अब जीवित रहने से मर जाना कहीं अच्छा था।

अहमद की लुटती हुई मुहब्बत ने उसके इस्लाम और उसके जोश पर तुषारपात कर दिया। उसने पूछा, 'तुम्हारी बातों की गहराई को मैं समझ नहीं पा रहा हूं मस्तानी!'

'समझोगे कैसे? गहराई जो ढूंढ रहे हो। सीधी-सी बातों में भी तुम्हें गहराई नजर आने लगती है। वास्तविकता को समझने पर पर्दा कहाँ रह जाता है?'

'ठीक कहती हो', अहमद को अब अधिक नहीं समझना था, 'ऐसा ही होगा। मेरे समझ की गलती है,' उसका चेहरा उतर आया, था 'अच्छा अब चलूंगा।'

मस्तानी उठ खड़ी हुई। अहमद चला गया।

: ६ :

बाजीराव चार दिन पूना में रुका। मस्तानी ने इन चार दिनों में बाजीराव से क्या-क्या पाया, इसके विषय में कुछ कहा तो नहीं जा सकता परन्तु अनुमान द्वारा यह कल्पना की जा सकती है कि उसका हृदय एक नवीन संसार में विचरण करने लगा था। उसका मन खोया-खोया कुछ ढूंढने लगा था। नित्य वह पेशवा को देखने का प्रयास करती और किसी-न-किसी प्रकार उन्हें देखकर नई व्यथा लिये लौट आती। व्यथा इसलिए कि वह अपनी वास्तविकता को दिखा नहीं पाती थी। चार दिन वैसे ही उड़ गये जैसे सेमर के फूल से चिटखी हुई रुई। पांचवे दिन पेशवा ने सेना सहित कूच कर दिया। मस्तानी का हृदय जैसे टूक-टूक हो गया हो। उसने देखा, उसका आराध्य देव सुसजित घोड़े पर सेना के आगे-आगे बिहंसता चला जा रहा था। वह अपने को न रोक सकी और उसके नेत्रों से आँसू गिरने लगे।

पेशवा बाजीराव रुकता हुआ मालवा की ओर बढ़ तो अवश्य रहा था, परन्तु अपनी ओर से स्वयं अभी वह कोई युद्ध छेड़ना नहीं चाहता था। प्रथम वह पिता द्वारा मुगल सम्राट फर्रुखसियर से प्राप्त उन स्वराज, चौथाई और सरदेशमुखी के अधिकारों के अस्तित्व को विभिन्न प्रदेशों में तोलना चाहता था, क्योंकि दिल्ली स्थित राजदूत से सूचना मिल चुकी थी कि निजामुल-मुल्क की सलाह से मुहम्मदशाह (जो फर्रुखसियर के कत्ल होने पर तख्त पर बिठाया गया था और बाद में मुहम्मदशाह 'रंगीला' के नाम से विख्यात हुआ) ने उसे आदेश दिया है कि वह किसी भी भाँति मराठों की शक्ति को पूर्णतः नष्ट करके सदैव के लिये रास्ता साफ कर दे।

बाजीराव निजामुल-मुल्क की दूरदर्शिता को भली भाँति समझता था। निजाम भी समझ रहा था कि बाजीराव के नेतृत्व में मराठों का बढ़ता

उत्साह चौथ और सरदेशमुखी तक सीमित न रहकर यवनों की सत्ता का अन्त करके हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करेगा। दोनों चतुर थे। कूटनीतिज्ञ थे और दूरदर्शी। अन्तर इतना था कि एक तपातपाया सेनापति होने के साथ अपार शक्ति वाला था तो दूसरा महत्वाकांक्षी युवक और सीमित सैनिक शक्ति का स्वामी था। दोनों की तुलना नहीं की जा सकती थी। हां, केवल योग्यता और वीरत्व के द्वारा प्राप्त सफलताओं के आधार पर ही वीरता, कायरता, चतुरता, अचतुरता और योग्यता तथा अयोग्यता का निर्णय किया जा-सकता था।

यद्यपि निजामुल-मुल्क एक विशाल सेना सहित मालवा में आ डटा था, परन्तु बाजीराव से वह खुल कर लड़ना नहीं चाह रहा था। उसे पेशवा द्वारा पराजित होने का भय था और पराजित होने पर उसकी स्थिति कैसी होगी। इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। अत: सांप मरे और लाठी न टूटे वाली कहावत को चरितार्थ करने से ही उसका काम बनता था। वह मराठों में फूट डलवा कर आपस में लड़वा देने की घात में था पर अभी तक उसे सफलता नहीं मिल सकी थी।

उधर पेशवा अपनी ताक में था। वह निजाम के सेनापतित्व और कांइँ-यापन से अनभिज्ञ तो था नहीं, अत: अपनी शक्ति अनुसार अवसर ताक कर कार्य-सिद्धि के षड़यन्त्र में लग गया।

पेशवा की प्रगतिगामी सेना के आगमन से निजाम भयभीत होने लगा। उसने तुरन्त बाजीराव के पास दूत भेज कर शांति-वार्ता द्वारा समस्याओं को हल करने के लिये आग्रह किया। बाजीराव को कब नाहीं थी। वह तो चाहता ही था। सहमत हो गया। मालवा और गुजरात की सरहद पर दोहाद से लगभग बारह कोस दक्षिण, बोलशा नामक स्थान को वार्ता के लिये चुना गया। सारी तैयारियां होने के उपरान्त दोनों सेनापति वहां मिलने के हेतु एकत्रित हुये, पर सतर्क दोनों ही थे।

लगभग एक हफ्ते तक सम्मेलन के उपरान्त दोनों अपने-अपने स्थानों को लौट पड़े। निजाम ने चौथ और सरदेशमुखी के अधिकारों को स्वीकार किया और उन्हें शीघ्र-से-शीघ्र देने की प्रतिज्ञा की। यह पेशवा की विजय का श्रीगणेश था। इसके उपरान्त वह अपने अन्य प्रान्तों का निरीक्षण करता हुआ सतारा को लौटा।

पूना में स्वागत समारोह की तैयारियां थीं। बाजीराव को पूना रुकना पड़ा। कुछ क्षणों तक उसकी जय-जयकार से सारी दिशायें गूंज उठीं। तद्-

परांत तिलक और जयमालाओं से वह ढक दिया गया। पूना की उस एकत्रित जन समूह में मस्तानी भी एक ओर खड़ी अपने देवता को देख रही थी। उसके नेत्रों से अश्रु गिर रहे थे और वह उन्हें देख रही थी। महीनों प्रतीक्षा के उपरान्त तो आज यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था, फिर भविष्य में हो न हो। अतः प्राप्त अवसर का वह अधिक-से-अधिक लाभ उठा लेना चाहती थी। किन्तु उस नादान को यह ज्ञात नहीं कि इस लाभ से कोई वास्तविकता नहीं थी। झोपड़ी में रहकर महलों के स्वप्न देखने का अर्थ—पाये हुये को खोना ही तो होता है।

मस्तानी देखती रही जब तक वह देख सकती थी। पेशवा नगर से होता हुआ पड़ाव पर पहुँचा। मस्तानी सोचती लौट आई। घर पर भी बहुत समय तक अपने वर्तमान भविष्य को सोचती रही, परन्तु छोर उसे नहीं मिल रहा था। उसके मिलने का कोई साधन भी नहीं था। वह उसे समझ कर भी विवश थी। हृदय नहीं समझ रहा था।

आखेट प्रिय बाजीराव को अवसर मिले और वह उसका सदुपयोग न करे, यह असम्भव था। दूसरे ही दिन उसकी ओर से नगर के सभी आखेट-अनुरक्त व्यक्तियों को आमन्त्रित किया गया। निश्चित समय पर पेशवा निकला। नगर के अन्य व्यक्तियों में एक अहमद भी था, परन्तु मस्तानी नहीं थी। घोड़े पर उड़ता पेशवा अन्य अहेरियों को पीछे छोड़ गया, परंतु अहमद अब भी उसके पीछे था। कुछ दूर और जाने पर पेशवा की चाल धीमी पड़ी। अहमद समीप आ गया। पेशवा ने पीछे मुड़कर देखा। उसे प्रसन्नता थी अहमद की घुड़सवारी पर।

जिस समय अहमद अपने घोड़े पर चिपका पेशवा के पीछे हवा से होड़ लगा रहा था, उसी समय एक और घुड़सवार वृक्षों की ओट से निकल कर उसके पीछे हो लिया किन्तु कुछ ही दूर आगे चलकर वह बायीं ओर जंगल में तत्काल अन्तर्ध्यान हो गया। अहमद को इसका आभास नहीं मिला।

बाजीराव ने घोड़े की चाल धीमी की। उसने अहमद को भी साथ लेने का विचार किया। अहमद का घोड़ा और समीप आया। अहमद ने सतर्कता से अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई और झट से भाले को तानता हुआ पेशवा को मारने ही वाला था कि बायीं ओर जंगल से वही घुड़सवार निकला और जब तक अहमद अपने भाले को फेंके-फेंके उस नवागन्तुक द्वारा फेंका हुआ भाला अहमद के घोड़े के पिछले पुट्ठे पर लगा। घोड़ा जोरों से चीत्कार

कर गिर पड़ा। अहमद के हाथ से भाला छूट गया और वह घोड़े से लुढ़कता दूसरी ओर जा गिरा।

घोड़े की कराह भरी हिनहिनाहट और उसके गिरने के शब्द से पेशवा चौंक गया। उसने पीछे देखा, किन्तु कुछ समझ न सका। वह घोड़े से कूद कर अहमद के सहायतार्थ दौड़ा परन्तु उसके पहुँचने के पूर्व ही, मारने वाला वहाँ वर्तमान था। उसने धूल - धूसरित अहमद को घूरते हुये धीरे से पूंछा, 'अब इस नीचता पर उतर आये अहमद ! हद कर दी तुमने।' अहमद बोलने में असमर्थ था। उसके मुंह और हाथों में अधिक चोट आई थीं। घुटने छिल गये थे।

पेशवा ने आते ही पूंछा, 'क्या हुआ ?' परन्तु उसकी दृष्टि झुके युवक घुड़सवार को देखकर कुछ ढूंढने - सी लगी। पर तत्काल स्मरण आते ही उसने उसकी पीठ को थपथपाया, 'तुम्हीं ने तो उस बार मेरी जान बचाई थी ?'

युवक के शरीर में कंपकपी दौड़ गई। वह सतर्कता से हट कर खड़ा हो गया। 'ऐसा कह कर श्रीमन्त लज्जित न करें। मैंने केवल कर्तव्य का पालन किया था। श्रीमन्त की जीवन-रक्षा मैं क्या कर सकता हूं।'

पेशवा की दृष्टि छटपटाते घोड़े की ओर गई। उसने घोड़े के पुट्ठे में धंसे भाले को आश्चर्य से देखा और उसने बढ़कर भाला निकाल दिया। घोड़ा उठा और फिर गिरा। यह गिरना उसका अन्तिम था। 'यह भाला तुमने मारा था ?' उसने पूंछा।

'हाँ, श्रीमन्।'

'क्यों ?'

'इसका स्वामी आपकी हत्या करने का प्रयत्न कर रहा था।' युवक बतलाने के लिये विवश था।

पेशवा की बड़ी-बड़ी आँखें फैल गईं, 'मुझे !' उसके आश्चर्य की सीमा न रही।

'जी हाँ।'

पेशवा ने पृथ्वी पर पड़े अहमद को घूरा। उसे अब भी विश्वास नहीं हो रहा था। और विश्वास हो भी तो कैसे ? पूना का निवासी पूना के मालिक के बध का प्रयत्न करे और बिना किसी कारण। इससे बढ़कर और आश्चर्य की कौन सी बात हो सकती थी। 'बिना किसी कारण ?'

युवक असमंजस में पड़ गया।

'बिना किसी कारण,' बाजीराव ने दुहराया और उसका हाथ तलवार की मूठ पर जा पहुँचा, 'यह मुसलमान है ?'

'मुसलमान मैं भी हूं श्रीमन्त।'

पेशवा का हाथ रुक गया। 'तुम भी मुसलमान हो।'

'जी।'

'इसे तुम जानते हो?'

'अच्छी तरह। यह मेरे परिचितों में है। मेरे यहाँ आता-जाता है।'

'तब तो तुम्हें कारण विदित होना चाहिये।'

'विदित ही कहना उपयुक्त होगा श्रीमन्त! नहीं कहने से तो श्रीमन्त की शंका और बढ़ेगी।'

इसके पूर्व की पेशवा अहमद से कुछ पूंछे, युवक ने हाथ जोड़े, 'श्रीमन्त से एक प्रार्थना है।'

'कहो।'

'अहमद, श्रीमन्त से जीवन दान पाकर अपनी नीचता पर जीवन भर पश्चाताप करता रहेगा और वैसे भी श्रीमन्त के सामने पहली गलती क्षम्य होनी ही चाहिये।'

पेशवा मुसकराने लगा। 'युवक,' वह बोला 'कर्तव्य परायण होने के साथ तुम वाचाल भी हो। तुम्हारे ऐसे युवकों को मेरे साथ होना चाहिये था।'

'अब बहुत ही शीघ्र श्रीमन्त की सेवा में हाजिर होकर सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करूंगा। मेरी बूढी मां बहुत कुछ तैयार हो चली हैं।'

'इधर, मेरे समीप आओ।

युवक की छाती धक-धक करने लगी। गालों की लाली उड़कर सफेद हो गई। वह सहमता-सहमता आगे बढ़ा। पेशवा ने अपने गले से मोतियों का हार निकाल कर उसके गले में डाल दिया। पेशवा के क्षणिक स्पर्श से युवक के गालों की लाली फिर दौड़ आई। उसका शरीर रोमांचित हो उठा।

'यह तुम्हारी वीरता का पुरस्कार है। युवक, तुमने आज पुनः मेरी जान बचाई है। तुम्हारे इन उपकारों से मैं कभी उऋण हो सकूंगा, ऐसी आशा नहीं।'

युवक ने हाथ जोड़ लिये, 'श्रीमन्त को यह शोभा नहीं देता। ऐसा कहकर मुझे दीन दुनियां दोनों से वंचित न करें। यह शरीर श्रीमन्त की सेवायें करता एक दिन समाप्त हो जाय, यही अभिलाषा है। ऐसी किस्मत बिरलों को ही मिलती है।' युवक ने बहुत कुछ कह डाला था।

पेशवा का घोड़ा हिनहिना कर कानों को पटपटा रहा था। पेशवा ने मुड़कर देखा। घोड़ा आगे बढ़ आया। पेशवा कूदकर चढ़ गया। उसने

अहमद की ओर संकेत किया। 'इसके लिए.........'

'चिन्ता न करें। मैं अपने साथ घोड़े पर ले जाऊँगा।'

बाजीराव ने ऐड़ लगाई घोड़ा उड़ चला।

पेशवा के आंखों से ओझल हो जाने पर युवक ने अहमद की ओर गर्दन मोड़ी। उसने अहमद को सहारा देकर खड़ा किया और अपने घोड़े पर बैठाया। अहमद की आंखें मारे शर्म के गड़ी जा रही थीं। उसने बहुत साहस बटोर कर कहा, 'मस्तानी मैं बहुत शर्मिन्दा हूं। मैं नहीं बता सकता कि किस पागलपन में मैं ऐसी हरकत करने की हिम्मत कर बैठा था। माफी चाहता हूं।'

'प्रेम करना सीखो अहमद! सच्चा प्रेम। शक्ति और उपायों से नदी के बहाव को नहीं रोका जा सकता। केवल मोड़ा ही जा सकता है। फिर भी वह बहेगा अपनी ही इच्छानुसार।' मस्तानी घोड़े की रास पकड़े चल रही थी।

दूसरे दिन पूना में सूचना फैलते देर न लगी कि अहमद अपना सब कुछ छोड़कर कहीं चला गया।

: ७ :

* अरे बघंता काय चला जो राने चाल करून
हिन्दू पद पादशाही आंता सशीर काय

यह था विचार पेशवा बाजीराव का। तब भला वह स्वयं या अपनी सेना को शान्तिपूर्वक कैसे बैठे देख सकता था। उसे तो शीघ्र मराठों की सत्ता स्थापित करनी थी। उसने सतारा पहुँचते ही शाहू महाराज से विचार-विमर्श किया। गूढ़ मन्त्रणायें हुईं और पचास हजार सैनिकों सहित वह कर्नाटक को चल पड़ा। दक्षिण की यह पृथ्वी जिसकी रक्षा एक दिन स्वयं छत्रपति शिवा जी ने अपने रुधिर की नदी बहाकर की थी, आज उसी पवित्र भूमि को भला पेशवा अपने से कैसे देख सकता था। अब भी म्लेच्छ

* 'अरे देखते क्या हो! शक्तिशाली बनो। हिन्दू पद पादशाही की स्थापना के लिये क्या देर है?' बाजीराव।

उन प्रान्तों को अपना कह कर हिन्दुओं पर मनमानी करते रहें, उसे यह बर्दाश्त नहीं था।

पेशवा की विशाल सेना कृष्णा नदी को पार कर जाने लगी। यवनों में अब इतनी शक्ति नहीं थी जो पेशवा का सामना करते। फिर भी कुछ सूबेदारों ने आगे बढ़ कर रोकना चाहा, परन्तु वे उसी भांति पीसे गये जैसे चक्की में पड़ कर गेहूं। भिन्न-भिन्न स्थानों में चौथ वसूल किया गया और मराठी सत्ता की स्थापना की गई। बाजीराव आगे बढ़ा और श्रीरंगपट्टन जा पहुँचा।

इधर कूटनीति में पारंगत निजामुल-मुल्क अपने हथकंडे खेल रहा था। कोल्हापुर के सम्भा जी से उसकी वार्ता चल रही थी और सम्भा जी उसके कथनानुसार बहुत कुछ तैयार भी हो चुके थे। निजाम सम्भा जी को छत्रपति घोषित कर शाहू से लड़वा देना चाहता था। इधर उसकी गुप्त मन्त्रणायें शाहू के 'सेनासाहब सूबा' कान्होजी भोंसले और सर लश्कर सुल्तान जी निम्बालकर से भी चल रही थी। वे स्वार्थी पदाधिकारी बाजीराव की बढ़ती शक्ति से चिन्तित हो उठे थे। अतः पेशवा को नीचा दिखाने के हेतु उन्होंने यही मार्ग अपनाया था। वे निजाम को गुप्त सहायता देकर बाजीराव को सदैव के लिए दूध की मक्खी की भांति निकाल फेंकना चाहते थे। स्वार्थी प्रसन्न थे। निजाम का मतलब सिद्ध हो रहा था। निजाम अपनी प्रसन्नता पर फूला नहीं समा रहा था। भविष्य की कल्पनायें उसे चकाचौंध कर रही थीं। वह और आगे बढ़ा। उसने अपने तीन चतुर सूबेदारों तुर्कताज़ खां, गयास खां, और ईनाज़ खां को आज्ञा दी कि मराठों द्वारा तैनात चौथ तहसीलदारों को अधिक से अधिक परेशान किया जाय तथा चौथ वसूली में हर प्रकार के अड़ंगे लगाये जायँ।

इसी बीच निजाम से शाहू द्वारा चौथ की मांग की गई। निजाम को अवसर मिला। उसने लिख भेजा 'XXXचौथ की मांग सम्भा जी की ओर से भी की गई है। मैं नहीं समझ पाता कि चौथ दी जाय तो किसको। बेहतर होगा कि आप दोनों आपस में पहले फैसला कर लैंXXX।'

पत्र पढ़कर शाहू कुछ घबड़ा से गये। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। सम्भा जी अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए इतना पतित हो सकता है? म्लेच्छों का साथ देकर भाई का गला काट सकता है? छत्रपति ने पता लगवाया। बात सच निकली। उनके सामने एक विषम समस्या उठ खड़ी हुई। उन्हें यह समझते देर न लगी कि सम्भा जी के रूप में निज़ाम इस बार क्या करना चाहता है। पेशवा के दक्षिण जाने से शाहू और भी डावांडोल हो रहे थे।

उनके सामने अब एक ही रास्ता था। पत्र लिख कर सम्भाजी को समझाना। उन्होंने पत्र लिखा 'xxजो कुछ नवाब निजामुलमुल्क ने मुझे लिखा है उससे मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि आपको मेरे द्वारा किये हुए राज्य सम्बन्धी कार्य प्रिय नहीं हैं। ऐसा हो सकता है। इस पर मुझे आपत्ति नहीं किन्तु यह समय भेदभाव का नहीं है। इस समय हमें एक होकर अपनी संगठित शक्तियों द्वारा मुगल प्रान्तों को अपने अधिकार में करके स्वराज्य की नींव को दृढ़ करना है, जिस प्रकार हमारे पूर्वजों ने किया था। आप दक्षिण को सँभालें और मैं उत्तर को। और जो कुछ मुझे उत्तर में प्राप्त हो उसमें उचित भाग मैं आपको दूँ और इसी प्रकार जो आपके द्वारा दक्षिण में प्राप्त हो उसमें मैं भी भागी बनाया जाऊँxxx।'

परन्तु सम्भा जी ने इसे स्वीकार नहीं किया, वह निजाम की सहायता का स्वप्न देख रहा था। उसने शाहूकार के पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया। वह निजाम के पास अपने भेजे हुये पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। उत्तर शीघ्र आया और उसके अनुसार सम्भा जी सेना सहित हैदराबाद की ओर चल पड़ा।

निजामुल-मुल्क के लिये यह स्वर्ण अवसर था। वह जो भी चाहे इस समय कर सकता था। पेशवा कर्नाटक में था। सेना साहब सूबा और सर लश्कर मिले हुये थे। अब उसे भय किसी का नहीं था। अतः सम्भा जी के पहुँचते ही उसकी सेना सतारा को चल पड़ी। मुसलमान सैनिकों और सरदारों की बन आई थी। वे इस बार हिन्दुओं से कसकर बदला लेना चाहते थे। बढ़ती सेना को सब कुछ करने का अधिकार दे दिया गया था। और वे सब कुछ कर भी रहे थे। तुर्क ताज खाँ ने तो कुहराम मचवा दिया था। निजाम की सेना विजय करती बढ़ रही थी।

उधर निजाम की सेना सम्भा जी को लेकर आ रही थी और इधर सतारा के आस-पास निजाम द्वारा तैनात पिट्ठुओं ने भी अपनी हरकतें आरम्भ कर दी थीं। मराठों से छुटपुट लड़ाई होने लगी। छत्रपति घबड़ा उठे। निजाम से मुकाबिला करने की उनमें क्षमता नहीं थी। मुकाबिला करने वाला था पेशवा जो इस समय कर्नाटक में था। शाहू की चिन्ता बढ़ती गई और अन्त में जब उन्हें यह बतलाया गया कि पूना पर भी सम्भा जी का अधिकार हो गया तो वे किंकर्तव्य-विमूढ़ से हो गये। उन्होंने तत्काल मंत्रियों की बैठक बुलाई। विचार-विमर्श हुये। राय ली गई। अधिकतर निजाम से संधि के पक्ष में थे। शाहू विवश थे। उन्होंने सुमन्त और प्रति-

निधि को आदेश दिया कि वे निज़ाम से संधि वार्ता आरम्भ करें।

वार्ता आरम्भ हुई। निज़ाम ने कहलवाया, 'शाहू महाराज को चौथ की रक़म अदा तो की जायेगी लेकिन इस शर्त पर कि सारे प्रान्तों से वसूली के गुमाश्ते वापस बुला लिये जायँ। बात सीधी और छोटी थी। यह भी कोई शर्त थी! इसे मानने में किसे आपत्ति? मराठों को चौथ की रकम मिल ही रही थी और उन्हें चाहिये क्या? कर्मकारों की नियुक्ति का प्रयोजन चौथ वसूली ही से था, जिसका भार अब निजाम स्वयं ले रहा था। शाहू के सभी मंत्रियों ने इसके पक्ष में राय दी। संधि-पत्र बनने लगा हस्ताक्षरों के लिये।

सन्धि पत्र तैयार हो गया। छत्रपति ने हस्ताक्षर किये। कागज़ जाने ही वाला था कि पेशवा के आने की सूचना मिली। इस समय वह सतारा से से चार कोस की दूरी पर था। खलबली मच गई। बैरियों ने दांतों तले उँगली दबाई। सन्धि पत्र शाहू ने पेशवा से राय ले लेने के लिये रोक लिया।

दूसरे दिन दरबार में पेशवा के सम्मुख सन्धि पत्र रखकर सारी घटनायें आरम्भ से अन्त तक बतलाई गईं। साहू मौन थे। पेशवा ने सरसरी दृष्टि से छत्रपति तथा अन्य मन्त्री गणों को देखा। वैसे बहुत सी बातें तो उसे रात में ही विदित हो चुकी थीं, फिर भी उसने बड़ी नम्रता पूर्वक साहू से पूछा, 'महाराज! मुझे संधि से आपत्ति नहीं है। जब अन्य आदरणीय मन्त्रियों के सहित सेना साहब सूबा और सर लश्कर सुल्तान जी की भी सलाह है तो सन्धि होनी ही चाहिये।' बाजीराव ने उन दोनों को कनखियों से निहारा, 'पर एक चीज़ जानना चाहूंगा। क्या आप लोगों ने यह भी सोचा है कि इस संधि से मराठी सरकार की कितनी बड़ी आर्थिक और राजनैतिक क्षति होगी?'

निजाम का चाटुकार सेना साहब सूबा कान्होजी भोंसले ने शीघ्रता से उत्तर दिया, 'न आर्थिक क्षति है और न राजनैतिक, नवाब तो चौथ देने को कहता है। अगर कर्मकरों को हटा लिया जाय तो इसमें अपनी क्या क्षति है? चौथ मिलने से मतलब है। चाहे जैसे मिले। निजाम द्वारा हमें और सुविधा होगी।'

'भोंसले साहब! जरा ठंडे दिमाग से सोचें। इस प्रकार बिना सोचे-विचारे किसी कार्य को कर बैठने से सम्भव है, किसी व्यक्ति विशेष का कुछ लाभ हो जाय, परन्तु राज्य के हित में वह कहाँ तक उचित और उपयुक्त है,

इसका ध्यान प्रत्येक को पहले रखना होगा। मैं………' पेशवा ने भीतरी चोट दी।

सर लश्कर ने रूखे स्वर से काटा, 'राज्य की जितनी चिन्ता हम लोगों को है सम्भवतः उतनी आप को नहीं। यह लड़कों का खेल नहीं। इस अखाड़े में दूरदर्शी होने की आवश्यकता है। समयानुसार राज्य पर आये संकटों का निवारण करना ही बुद्धिमानी है। निजामुल-मुल्क की शक्तियों को देखते हुये इस समय यही रास्ता ठीक है। युद्ध छेड़ने से अपनी ही हानि है।'

'राज्य-भक्ति मेरे में अधिक है या आप में इसका मापदंड समय है सर-लश्कर साहब! इस समय अधिक कहना अपनीं जबान को खराब करना होगा। पर एक बात आप से पूँछना चाहूँगा। छत्रपति महाराज शिवाजी और औरंगजेब की समानता को सम्भवतः आप भूल गये है। औरंगजेब जैसे शक्तिशाली सम्राट के आगे वे उसी प्रकार थे, जैसे पहाड़ के नीचे ऊँट। किन्तु छत्रपति ने जो कुछ किया वह सर्व विदित है और प्रत्यक्ष है। आज आप जिस स्थिति में है, वह उन्हीं की देन है। अन्यथा उत्तर भारत की भाँति आपका भी अस्तित्व प्रायः लोप हो गया होता। आप………'

'परन्तु मैं नहीं समझ पाता पेशवा साहब कि इस सन्धि से हम लोगों की हानि क्या है? यदि कोई कार्य बिना युद्ध के हो जाता है तो इसकी क्या आवश्यकता। हमें यवनों से बदला लेना नहीं है। केवल अपनी सत्ता स्थपित करनी है।'

'वही रास्ता तो बन्द हुआ जा रहा है सुल्तान जी! निजाम कितना धूर्त और दूरदर्शी है, यह आप के ध्यान में नहीं समाता। कर्मकारों की नियुक्ति का प्रयोजन आप केवल चौथ वसूली समझते हैं, परन्तु मेरी दृष्टि में उसका महत्व बहुत अधिक है। मैं इन्हीं कर्मकरों द्वारा एक दिन सारे राष्ट्र पर भगवा ध्वज लहरा देना चाहता हूं। गुमाश्तों की नियुक्ति का अर्थ है आपकी सत्ता का उन प्रदेशों में खूंटा गाड़ना। आप इसे दूर तक सोचें। रही युद्ध में हारने-जीतने की बात इसके लिये मैंने जीवन ही दाँव पर लगा दिया है। नमक खा रहा हूं तो उसकी अदायगी भी करूंगा, जैसे मेरे पिता ने की थी।'

दरबार में सन्नाटा छा गया। मौन शाहू उस युवक को देख रहे थे। सेना-साहब सूबा और सर-लश्कर अब क्या उत्तर देते? अन्य मन्त्रियों ने ने बाजीराव की दूरदर्शिता की सराहना की, पेशवा शाहू को सम्बोधित करके

आगे बोला 'महाराज ! ईश्वर न करे मेरी धारणा गलत हो। मैं आप से कहे देता हूं कि सन्धि होते ही निजाम आपको चौथ देना बन्द कर देगा। इसे आप अब सत्य समझें। आगे आप की इच्छा। उचित-अनुचित का ज्ञान कराने योग्य मैं नहीं हूं। मेरा कर्तव्य है, आपकी सेवा करना। उसे मैं जीवन के अन्त तक करता रहूंगा।' पेशवा चुप हो गया।

आपस में कानाफूसी होने लगी। विचार बँट गये। निर्णय का मार्ग निकालना कठिन जान पड़ने लगा। शाहू भी दुविधा में गड़ गये। युद्ध को सम्भवतः वे भी पसन्द नहीं करते थे, शायद उन्हें कुछ डर था। परन्तु साथ ही बाजीराव की दूरदर्शिता पर भी उन्हें भरोसा था। पेशवा उस छोटी-सी उम्र में समय और समय की गति का कितना अच्छा पारखी बन चुका था, इससे वे अनभिज्ञ न थे।

अभी विचारों का आदान-प्रदान ही हो रहा था कि एक कासिद निजाम का पत्र लेकर आया। पत्र की विशेष पंक्तियाँ यह थीं, 'xxx संधि की शर्तें अब इस प्रकार होंगी। चौथ आप को न देकर सम्भा जी को दिया जायेगा। सम्भी जी ही अब मराठा राज्य के वास्तविक स्वामी हैं xxx' पत्र सुनकर छत्रपति का चेहरा तमतमा आया। वे उठ खड़े हुये, 'बाजी ! तुम्हारी बात सत्य निकली। यह धूर्त निजाम अपनी चालों से बाज नहीं आ सकता। युद्ध की तैयारी करो।'

दरबार भंग हो गया।

छत्रपति शाहू ने युद्ध की घोषणा की। निजामुल मुल्क ने सहर्ष स्वीकार किया और एक विशाल सेना के साथ हैदराबाद से चल पड़ा, परन्तु उसकी गति गोपनीय थी। वह किधर जारहा था, कहां जारहा था यह किसी को विदित नहीं था। जाना चाहिये उसे पूना तो वह जारहा था औरंगाबाद। फिर भी वह जा रहा था। उसकी विशाल सेना और बड़ी-बड़ी तोपे गर्जती हुई बढ़ रहीं थीं। निजाम ने बड़ा भयंकर संकल्प किया था।

इधर पेशवा भी अपनी सेना सहित निकला। युद्ध घोषणा होते ही सम्भा जी पूजा छोड़ कर पहले ही निजाम से जा मिले थे। अतः पेशवा सरलता पूर्वक पूना होता हुआ पुतम्बा के समीप गोदावरी को पार कर और आगे बढ़ा। सामने ईवाज खां फौज लिए खड़ा था। उसे मुगालता हो गया। उसके भिड़ने और भागने में विशेष समय नहीं लगा। बाजीराव निज़ाम के प्रान्तों को रौंदता आगे बढ़ा। उसने ताप्ती नदी पार की और गुजरात की ओर मुड़ पड़ा

औरंगाबाद की ओर बढ़ती निजाम की सेना अचानक पूना की ओर मुड़ गई। असली रास्ता तो इसका यही था ही। वह प्रथम पूना पर अधिकार करना चाहता था तदुपरान्त सतारा पर। सामना करने वाले कहीं हों तो निज़ाम रुके भी। वह सीधा हरहराता सोहगढ़ आया। कुछ तलवारें खड़कीं परन्तु उनका खड़कना और न खड़कना बराबर था। सोहगढ़ पराजित हुआ। वह चिंचवाड़ आया और फिर पूना। यद्यपि पूना पहले ही खाली किया जा चुका था फिर भी जो थे सो थे ही। दूसरे दिन खुले दरबार में निजामुल मुल्क ने सम्भा जी को छत्रपति घोषित किया और लोगों को उपहार और सनदें दी गईं। सम्भा जी ने वहीं एक नई शादी की और इस उपलक्ष पर कई दिनों तक जश्न होता रहा।

जैसे ही बाजीराव को पूना पर निजाम के आधिपत्य की सूचना मिली वह शीघ्र बुरहानपुर की ओर लौट पड़ा। बुरहानपुर मुगलों की बहुत बड़ी मंडी थी जिसे किसी भी दशा में निजाम ध्वंस होते नहीं देख सकता था। पेशवा इसे भली भांति समझता था। बाजीराव का उधर मुड़ना था कि निजाम पूना छोड़कर उधर को लपका। निज़ाम को बुरहानपुर की चिन्ता तो थी साथ ही उसका उत्तरी इलाका भी तो पेशवा द्वारा सम्पूर्णतः सत्यानाश हो जाता। पेशवा को रोकना आवश्यक था।

बढ़ते निजाम ने निर्णय किया। पेशवा को खुले मैदान में घेर कर धज्जियां उड़ा दी जांय। यह उसके लिए सरल था। परन्तु उधर गनीमी-कावा में पारंगत पेशवा के सैनिक किसी दूसरे विचार में थे। वे खुले स्थान में लड़कर तोपों के शिकार नहीं होना चाहते थे। दोनों सेनापति एक दूसरे के मनोभावों से भली भांति परिचित थे। इसलिए दोनों की गति चातुर्य पूर्ण थी। निजामुल-मुल्क को अपनी तोपों पर भरोसा था, तो पेशवा को गनीमीकावा पर। पेशवा निजाम को उस स्थान पर लाना चाहता था जहां उसकी तोपों का कोई उपभोग न हो और निजाम पेशवा को उस स्थान पर लाना चाहता था जहां उसकी सेना तोपों से उड़ा दी जाय। किन्तु पेशवा के गुप्तचरों ने निजाम की आशाओं पर पानी फेर दिया। निजाम की प्रत्येक गतिविधि की सूचना बाजीराव को अविलम्ब मिल रही थी। वह अधिक सचेत था।

गोदावरी पार करने पर भी जब निजामुल-मुल्क को पेशवा न दिखाई दिया तो उसे और आगे बढ़ना पड़ा परन्तु तोपों रहित। उसे सारा भारी

बोझल सामान छोड़ना पड़ा। वह जल्दी औरंगाबाद की ओर बढ़ने लगा। पहाड़ियों का यह प्रदेश बड़ा उबड़-खाबड़ और दुरुह था। कोसों चलने पर भी अन्न-जल प्राप्त करना सम्भव नहीं था। अब औरंगाबाद दस कोस था। निजाम की आशा बलवती हुई। मन में उत्साह बढ़ा। परन्तु कुछ दूर आगे चलने पर उसके गुप्तचरों ने सूचना दी कि मराठी सेना उसके चारों ओर दीमकों की भांति घिरती चली आ रही है। वह चिंतित हो उठा। मुगलों की गति बढ़ी किन्तु स्थान बुरा था।

बाजीराव की दूरदर्शिता और चतुराई सफल हुई। वह निजामुल-मुल्क को जिस स्थान पर लाना चाहता था ले आया। जैसे जैसे पहाड़ी स्थलों की दुर्गमता बढ़ती गई वैसे वैसे बिखरी मराठी सेना सिकुड़ती गई और निजाम को घेरती गई। अलग अलग टुकड़ियों में विभाजित सैनिक निजाम को इस प्रकार जकड़ लेना चाहते थे जैसे मकड़ी अपनी जाले में फंसी मक्खी को जकड़ती है। पेशवा का घेरा इतना जटिल हो गया कि निजाम का बाहरी जगत से पूर्णतः सम्पर्क टूट गया। पहाड़ियों में पले मराठे यही चाहते थे।

जंगल में छनती चांदनी अन्धकार और प्रकाश का संयोग प्रदर्शित कर रही थी। बाजीराव अपनी सेना सहित धीरे धीरे बढ़ रहा था। उसका उद्देश्य था कि निजाम को परास्त करना क्योंकि उसको पूरा किए बिना वह सुख की नींद सोने में असमर्थ था। पेशवा पंक्तिबद्ध सैनिकों सहित एक पहाड़ी को पार करने लगा। चढ़ाई समाप्त हुई; उतार पर अधिक सतर्कता की आवश्यकता थी। सैनिक उतरने लगे एक के पीछे एक। पेशवा का घोड़ा समतल पर आकर वृक्षों की ओट में आया था कि एक पीछे वाले सैनिक ने बड़ी सावधानी से अपनी तलवार म्यान से निकालकर पेशवा के सिर को धड़ से अलग करना चाहता था कि उसके पीछे उतरते हुए एक युवक सैनिक की उस पर दृष्टि पड़ी। उसने अपने घोड़े को एड़ लगाई। घोड़ा वफादार था। वह आने वाले घोड़े को धक्का देकर उस तलवार धारी के समीप जा पहुंचा। युवक ने तलवार चलाई। तलवार धारी ने सिर बचा लिया परन्तु उसका उठा हाथ कट कर गिर पड़ा। वह भागा। युवक घुड़सवार के मुंह से निकल पड़ा 'अहमद!' उसके आश्चर्य का ठिकाना न था। अहमद का घोड़ा इधर उधर होता जंगल में ओझल हो गया।

घोड़ों की टापों की विभिन्नता तथा आक्रमण के प्रहार के शब्द ने पेशवा को सचेत कर दिया परन्तु भागते सवार के साथ साथ अहमद नाम सुन कर वह कुछ हड़बड़ा सा गया। उसने घोड़ा रोक लिया 'कौन, शिन्दे ?'

'नहीं मैं हूँ, श्री मन्त!' युवक समीप आया। चांदनी उसके मुंह पर चमक रही थी।

'तुम यहां भी!' पेशवा चकित था।

'जी, महराज की आज्ञा का पालन कर रहा हूं।' वह मुसकराया।

'तुमने मुझे सूचना नहीं दी'? पेशवा चलने लगा।

'सूचना के समय पर ही तो महाराज के सामने उपस्थित हुआ हूं। अनावश्यक श्री मन्त का समय नष्ट करना नहीं चाहता था।'

'यह भागता हुआ सवार अहमद था ? जिसने पू······।'

'जी। वही ······।'

पेशवा ने कुछ नहीं पूछा। मौन धीरे-धीरे घोड़े पर चलता रहा। कुछ समय उपरान्त उसने स्तब्धता भंग की 'आज से तुम कहीं नहीं जावोगे। मेरे साथ रहो। तुम मेरे शरीर रक्षक नियुक्त हुये, समझे।'

'जी आप ·········।'

बायीं ओर टापों की आवाज सुनकर पेशवा के कान खड़े हुये वह रुक गया। सैनिक सतर्क थे। आवाज समीप हो तो गई परन्तु थी किसी घोड़े की। आगन्तुक सवार ने पेशवा के समीप घोड़ा रोक कर तीन बार सलाम किया तदुपरान्त घोड़े को बढ़ाकर उसने धीरे से कुछ कहा। पेशवा ने सिर हिलाकर जाने की आज्ञा दी। सवार लौट पड़ा। बाजीराव ने रास झिटकी। घोड़ा आगे बढ़ा और उसके साथ सेना ने भी द्रुतगति से प्रस्थान किया।

ढलती रात ने उठते प्रभात को रोकना चाहा पर उसे सफलता नहीं मिली। सबेरा हुआ। पेशवा अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच गया। पाल-खेड़ की चित्रमयी पहाड़ियों में निजाम घेर लिया गया। भोजन तो दूर पानी तक मिलना दूभर हो गया। मुगलों की दशा सोचनीय थी। बादशाही नतमस्तक होकर पेशवाई का स्वागत कर रही थी। आसफजाह निजामुल-मुल्क की आशाओं पर तो तुषारापात हुआ सो तो हुआ ही, परन्तु तीस वर्ष की बहादुरी- दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता की ख्याति धूल-धूसरित हो गई। वह अब मुंह दिखाने योग्य न था। लेकिन विवशता सभी कुछ करा देती है, और फिर युद्ध की विवशता। वहाँ तो दो के अतिरिक्त

तीसरा प्रश्न ही नहीं—'हां या ना,' आसफसाह के सामने संधि थी या जीवन से हाथ धोना। आशा सद्धिदायिनी है। निजाम ने संधि के लिए दूत भेजा और अन्न-जल के लिए प्रार्थना की।

पेशवा की अभिलाषा पूर्ण हुई। उसने वह कार्य दिखाया जिसकी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। उसने उस धुरंधर सेनापति को परास्त किया जिसके सम्मुख वह एक नादान बच्चा कहा जा सकता था। पेशवा की प्रसन्नता का ओर छोर न था। वर्षों का स्वप्न पूर्ण हुआ। उसके मार्ग पर पड़ा चट्टान चकनाचूर हुआ। पेशवा ने आदेश जारी किया। निजाम सेना सहित सुरक्षित मुंगी शिवगाम लाया गया। भोजन और जल का प्रबन्ध हुआ, दूसरे दिन आसफजाह ने विभिन्न प्रकार की वस्तुयें पेशवा को उपहार में भेंट की। बाजीराव की ओर से भी प्रत्युत्तर में शिष्टता बर्ती गई। तीसरे दिन मध्यान्ह उपरान्त निजाम पेशवा के डेरे में आया और संधि की वार्ता आरम्भ हुई। लगभग दो घण्टे वार्ता के उपरान्त बैठक कल के लिए स्थगित कर दी गई। बाजीराव ने बड़ा भयंकर विचार बना रखा था। वह आसफजाही को जड़से खोद डालना चाहता था जिसमें न रहे बांस न बजे बांसुरी।

अचानक संध्या को सतारा से कासिद आया। पत्र शाहू का था। पेशवा ने पत्र पढ़ा '...तुम्हें किसी भी दशा में न तो निजामुल-मुल्क को किसी प्रकार की क्षति पहुंचानी है और न उसकी भावनाओं को ठेस लगाना है। हम तुम्हारे श्रद्धेय पिता की स्मृति को चिरस्थाई रखने के हेतु ही इस पवित्र कार्य की पूर्ति का आदेश दे रहे हैं।...'

पेशवा रात भर करवटें बदलता रह गया। सब करा कराया मिट्टी हो गया। पर किया क्या जाय, आदेश आदेश था। उखड़ती आसफजाही दृढ़ होकर चिरस्थाई हो गई। शाहू की यह दयालुता कितनी घातक सिद्ध हुई इसे इतिहास दुहरा रहा है।

दूसरे दिन संधि हो गई। फिर भी बाजीराव ने अपनी ओर से एक शर्त को रख ही दिया। छहों मुगल सूबों में मराठों के कर्मकार नियुक्त रहेंगे और सरकार संचालन तथा अन्य राजनैतिक कार्यों में उनकी सलाह अनिवार्य होगी। सेनायें अपनी अपनी दिशाओं को चल पड़ीं।

: ८ :

पेशवा बाजीराव जब मुङ्गी शिवगाम से लौटने लगा तो उसे अपने शरीर रक्षक युवक की याद आई परन्तु उसका कहीं पता न था। सेना में उसकी खोज कराई, किन्तु उसका पता तब लगता जब वह वहाँ होता। बाजीराव पूना को चल पड़ा। मार्ग से वह जिन गाँवों और कस्बों से निकलता जनता स्वागत करती फूली नहीं समाती थी। निज़ामुल-मुल्क को परास्त करना बच्चों का खेल नहीं था। उसके पराजित होने के अर्थ थे मुगलिया सल्तनत की नीव में पानी जाना। शिवा जी का स्वप्न अब उन्हें पूर्ण होता दिखाई पड़ने लगा था। हिन्दू जाति, धर्म की जाति है परन्तु उसमें धर्मान्धता नहीं। वह शक्ति द्वारा संचालित नहीं होती। उसका संबंध आत्मा और परमात्मा से है। यही उसकी विशेषता है।

देश और काल के समन्वय से परिस्थितियों का प्रादुर्भाव होता है और तब उन्हीं परिस्थितियों के अनुसार राजनैतिक साँचे ढलते हैं जिनका विकास उस समय के असाधारण व्यक्तियों द्वारा हुआ करता है जो उसी हेतु ब्रह्म का अंश लेकर अवतरित होते हैं। बाजीराव का देश और काल, बाजीराव जैसे व्यक्ति को ढूंढ रहा था और उसे मिल भी गया।

हर्ष से झूमता पेशवा पूना आया। पूना में बड़ी धूम-धाम थी। स्वयं छत्रपति सतारा से स्वागतार्थ पूना आये हुये थे। स्वागत समारोह के उप-रान्त शाहू लौट गये परन्तु पेशवा विश्राम हेतु रुक गया।

फागुन की चाँदनी रात हृदय में गुदगुदी उत्पन्न कर रही थी। पेशवा अपने खेमे में लेटा कुछ सोच रहा था। बगल के पलँग पर उसकी स्त्री काशीबाई, चांद को निहार रही थी। उसका मन मलिन था। वह सोचना नहीं चाहती थी। सोचने से उसे पीड़ा होने लगती थी। बाजीराव जिस आनन्द को परमानन्द समझता था, वही परमानन्द उसके लिए अत्यन्त कष्टदायक सिद्ध हो रहा था। दोनों समीप होकर भी एक दूसरे के विपरीत मार्ग पर चल रहे थे। पत्नी का मार्ग सीधा, संकुचित और स्वार्थपूर्ण था। पति का मार्ग टेढ़ा मेढ़ा, ऊबड़ खाबड़, विस्तृत और जन कल्याणार्थ था।

अभी तक काशीबाई इस प्रतीक्षा में थी कि उसका पति उससे कुछ कहेगा। इतने महीनों के बिछुड़न के उपरान्त वियोग प्रदर्शन करेगा। उसे रिझायेगा, मनायेगा और तदुपरान्त बाहुपाशों में जकड़ कर चूमता हुआ भविष्य में शीघ्र मिलते रहने की बार-बार प्रतिज्ञायें करेगा। परन्तु उसकी

मीठी कल्पनायें कल्पनायें ही रह गईं। मिलने पर बाजीराव ने केवल इतना ही पूछा था अच्छी तो हो, और उसने भी सिर हिलाकर हाँ कर दिया था। बस, यही थी मिलन और उसकी उत्सुकता।

पेशवा सोच रहा था। नई-नई युद्ध की योजनायें बना रहा था। भारत के मानचित्र को नवीन ढाँचे में तैयार करके पर्वतराज हिमालय के शिखर पर भगवा लहराना चाह रहा था। उसकी कल्पनायें बड़ी विशाल थी और और विचारणीय थी। काशीबाई अपने को न रोक सकी। उसका सतीत्व कहां तक सहन कर सकता था? उसने करवट ली, 'इस बार तुम्हारा समय युद्ध में कम लगा। जल्दी ही लौटे आये।' उसके स्वर में व्यंग की कर्कशता थी।

'जल्दी क्या, फिर भी पाँच छः महीने तो लग ही गये। ऐसी आशा थी नहीं।' पेशवा साधारण रूप से कह गया।

'सम्भवतः भविष्य में अब तुम्हें बाहर अधिक रहना होगा। वर्ष में कभी दो चार दिनों के लिये आ गये तो आगये। अवकाश कहाँ होगा? काम ही ऐसा उलझता जा रहा है।'

'निज़ाम की हार से मुगलों में बड़ी खलबली मच गई है और यह उस समय दूर होगी जब वे अपनी शक्ति से मुझे काँटे की भांति निकाल फेंकने में समर्थ हों। इसलिये युद्धों का तार टूटना अब कठिन ही समझो। फिर मुझे भी तो से शीघ्र से शीघ्र हिन्दूपद-पादशाही स्थापित करना है।' बाजीराव ने अब तक अपनी स्त्री के ढंग को नहीं समझा था।

'उचित है। यह प्रथम और परम कर्तव्य है। ऐसा न होने से ईश्वर के सम्मुख दोषों का भागी होना पड़ेगा, क्यों?'

पेशवा ने करवट ली और चांदनी के प्रकाश में अपनी पत्नी को तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर उसके मानसिक भावों को जानने का प्रयत्न किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। उसने पूँछा 'मैंने कुछ समझा नहीं काशी। क्या मेरा कर्तव्य आदरणीय और उचित नहीं है? तुमने तो ऐसे कह दिया मानों मेरे इरादों का मज़ाक उड़ा रही हो। क्या यह अनुचित और असंभव है।'

'जब जीवन के अन्य कर्तव्यों को भाड़ में झोंक कर केवल एक ही कर्तव्य की प्राप्ति पर उतर आये तो उसे पूर्ति करके कौन से तीस मार खाँ बन जाओगे। ऐसा कोई भी कर सकता है। योग्यता तो उस समय विदित होती है जब मनुष्य जीवन के प्रत्येक अंगों पर समान दृष्टि रखकर विभिन्न कर्तव्यों

के पालन में प्रयत्नशील दिखाई दे और साथ ही उनमें सफलता भी प्राप्त करे।'

बाजीराव ने कुछ समझा, 'बात तो सही कहती हो काशी, परन्तु जीवन के कर्तव्यों की विचित्रता का सही अनुमान लगाकार सब पर समान रूप से चलना अत्यन्त कठिन है। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रधान कर्तव्य के साथ उन विशेष कर्तव्यों के प्रति भी ध्यान रखा जा सकता है जिससे तुम्हारा प्रयोजन है।'

'तो मेरा प्रयोजन असंगत नहीं है न? चलिये एक बात तो मान ली आपने।' व्यंग की लघुता अब भी उसके स्वर में थी।

'असंगत तो नहीं परन्तु उसमें जो अपने पन की भावना है वह तुच्छ और कर्तव्य विमुख है।'

'उसे अपने पन की भावना कहकर कलंकित न कीजिये पेशवा साहब! वह आवश्यकता है और वह प्रधान तथा अनिवार्य है। मेरा भाव आप समझ रहे होंगे?' काशीबाई ने तर्क-वितर्क की आंधी उठा दी।

'फिर भी वह है तो स्वार्थ मिश्रित। त्याग रहित भावनायें अनिवार्य होती हुई भी कलुषित और निन्दनीय हैं।'

काशी सीधी लेट गई 'क्यों नहीं, त्याग की भावनाओं को थोपने वाले भी तो आप ही सब पुरुष हैं। अबलाओं, निर्बलों और असहायों से तो त्याग की बातें करेंगे ही किन्तु आप लोगों के मस्तिष्क में यह विचार नहीं आता कि जिन लोगों ने पहले ही अपना सब कुछ निछावर कर दिया है, उनके पास अब देने को क्या शेष है?'

'हां है। तुम्हारे कहने का जो अभिप्राय है उसके अनुसार अब भी कुछ शेष है। वहां आत्मिक त्याग की आवश्यकता है। उसके होते ही चित्त की चंचलता और असंतोष की भावनायें जो सम्पूर्ण कष्टों की जड़ है, नष्ट हो जायगी उसी भाँति जैसे अन्धकार प्रकाश की किरण से।' बाजीराव का पलड़ा भारी पड़ा।

काशीबाई मुस्कराई, 'वेदान्त की बातें मैं भी कर सकती हूं महाराज! वास्तविकता पर आइये। कहने और करने में बड़ा अन्तर है। इस प्रकार के त्यागी केवल उंगलियों पर गिनने को मिल सकेंगे। उनका होना न होना नहीं के समान है। खैर, इस तर्क कुतर्क से कोई अर्थ तो निकलता नहीं। आपको जिससे प्रसन्नता हो वही करें। मुझे संतोष है।'

बाजीराव उठा और उसके पर्यंक पर जाकर बैठ गया। वह पत्नी के सिर को गोद में रखता हुआ बोला, 'क्या मैं तुम्हारे हृदय के उदगारों को समझता नहीं? भली भांति समझता हूं। किन्तु इस कार्य का बीड़ा जिस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु उठाया है—अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक है। काशी, व्यक्तिगत सुखों का बलिदान करके मानवता का कल्याण करना मेरे विचार से उत्तम है।'

पति की उंगलियां पत्नी के सुन्दर कोमल कपोलों पर बेचैन होने लगी थी। काशी मौन थी पर पति के विचारों से सहमत नहीं थी। उसका भय-भीत हृदय स्वार्थ के बशीभूत होकर युद्धों से डरता था। उसमें विलास की कामना अधिक थी और त्याग तथा बलिदान की भावना का सर्वथा अभाव था।

: ९ :

पूना पर निज़ामुल मुल्क के अधिकार होने के पूर्व ही मस्तानी ने अपनी मां की राय से पूना छोड़ दिया था और गुजरात के मार्ग पर चल पड़ी थी जिधर पेशवा अपनी सेना सहित आसफजाह के इलाकों को रौंद रहा था। मस्तानी ने भी उसमें हाथ बटाया और सेना के साथ-साथ चलने लगी। पेशवा की समीपता से उसे संतोष मिल रहा था।

यह संयोग या घटना चक्र ही कहा जा सकता है कि मस्तानी इस बार पुनः पेशवा की जीवन रक्षा करने में समर्थ हुई और परिणाम स्वरूप उसे पेशवा का शरीर रक्षक बनना पड़ा था। उसे पेशवा की सन्निकटता भी प्राप्त हुई साथ ही पेशवा यह भी न जान सका कि उसका शरीर रक्षक पुरुष है या स्त्री।

आसफजाह निजामुल मुल्क से संधि हुई। पेशवा लौटने की तैयारी करने लगा। मस्तानी के लिये अब पेशवा का साथ छोड़ देना ही उचित था। शायद उसकी क़लई खुल जाय। अतः बाजीराव का ध्यान बटते ही उसने

दूसरे मार्ग का सहारा लिया और चक्कर काटती हुई पेशवा के लौटने के पूर्व ही वह पूना पहुँच गई थी।

मां से यात्रा का सारा वृतान्त बतलाते हुए मस्तानी ने अहमद के उस विश्वासघाती प्रहार का भी सविस्तार वर्णन किया। वृद्धा उसे सुनकर मस्तानी के मनोभावों से अवगत हो गई क्योंकि मस्तानी ने जिस मार्ग पर चलना आरम्भ किया था वह उस मार्ग से गुज़र चुकी थी। पर मां के सामने विवशता यह थी कि जब उसने उस रास्ते पर चलने का विचार किया था तब वह बना-बनाया तैयार मिला था। परन्तु मस्तानी को उसे प्रथम बना-कर तब चलना था। दोनों में बड़ी भिन्नता थी।

मस्तानी ने बातों के क्रम को बदला, 'मां तुमने एक बार बतलाया था कि बापू ने केवल तुम्हीं को पत्नी मानकर सब कुछ तुम्हारे ऊपर निछावर कर दिया था, पर मेरी समझ में नहीं आता कि जिन लोगों के दो या चार या इससे भी अधिक विवाह होते हैं वे लोग कैसे क्या करते हैं?' मस्तानी जो कुछ पूँछना चाहती थी वह पूँछ नहीं पा रही थी।

मस्तानी की मां ने उत्तर दिया 'प्रेम, ईश्वर की शक्ति है बेटी, जिसका नाता हृदय से है। इसकी कोशिश में वही आनन्द है जो उस परवरदीगार से लौ लगाने में। लेकि इश्क हक़ीक़ी बड़ा कठिन व्रत है, जिसमें साधना की जरूरत होती है।'

'पर साधना के लिये आधार भी तो चाहिये मां, जो विशेष गुणों से विभूषित हो।'

'यह कोई जरूरी नहीं है। आधार रूप गुण से भरा पुरा भी हो सकता है और नहीं भी। प्रेम इस प्रकार के बन्धनों से आबाद्ध नहीं है। उस...।'

'परन्तु आकर्षण अनिवार्य है। माँ, बिना उसके प्रेम कहाँ? खुदा को दुनियाँ क्यों पूजती है? शायद इसीलिए कि कि वह सब से अधिक शक्तिशाली है। सब के कष्टों को हरने वाला है। जब भी जैसा चाहे कर सकता है। यह आकर्षण नहीं तो और क्या?'

वृद्धा मुस्कराई 'अच्छा; मुझे यह तो बता कि तूने ऐसा भी कोई फकीर या साधु औलिया देखा या सुना है जो अपने स्वार्थ के लिए भगवान को भजता हुआ उसे पा सका है। अभी तक ऐसा कोई नहीं देखा गया। वह उसी को मिलता है जिसके मन में स्वार्थ की भावना नहीं होती। जहान का पालन करने वाला, सबको एक नज़र से देखने वाला, भला स्वार्थी और

चापलूसों के फन्दे में आ सकता ? उसमें आकर्षण नहीं आत्मा की अनुभूति है।' मस्तानी की मां ने व्याख्या की।

मस्तानी सोचने लगी। उसने उन थोड़े से क्षणों में जो कुछ सोच कर निष्कर्ष निकाला वह उसके लिए आदन्ददायक और बाजीराव के प्रति उसके नवीन प्रेम में दृढ़ता की भावना जाग्रत करने वाला था। वह सिर उठाकर बड़ी-बड़ी आँखों से अपनी माँ को देखने लगी।

मस्तानी की मां ने आगे कहा 'आकर्षण द्वारा प्रेरित प्रेम क्षणिक होता है बेटी। वह असत्य है। वहाँ वासना की भावना है। वासना प्रेम में बड़ा बैर है। प्रेम त्याग चाहता है। निस्स्वार्थ त्याग। तभी वह हासिल किया जा सकता है। वैसे नहीं।'

मस्तानी ने और कुछ नहीं पूँछा। बैठी रही। उसका माँ उठकर अन्दर चली गई। मस्तानी बहुत समय तक नाना प्रकार के विचारों में उलझती सुलझती रही।

* * * *

पेशवा बाजीराव को पूना में आये कई दिन हो चुके थे परन्तु मस्तानी उसके आगमन पर उसे देखने नहीं गई। उसके हृदय पर बड़ा घहरा आघात पहुँचा था। उसका उमड़ता प्रेम अचानक सामने पहाड़ के आ जाने से टकराने लगा। उसकी दशा सांप छछूंदर जैसी हो रही थी, न छोड़ते बनता था और न निगलते। चित्त सदैव उचाट रहता था। जागते और सोते बस एक ही चिन्ता थी। भोजन करने बैठती तो दो चार कौर खाकर उठ जाती। तबियत की अस्वस्थता बताकर संध्या का नाच गाना बन्द कर दिया था फिर आखेट अहेर पर जाने की बात ही फिजूल थी। अजीब समस्या थी। माँ ने उसे बतलाया था प्रेम त्याग है, स्वार्थ रहित है, वासनाओं से परे है, ईश्वर का अंश है। पर जब वह उस कथन को अपने मनकी कसौटी पर परखती तो यह सारी ज्ञान की बातें थोथी प्रतीत होती। वह अनेक प्रकार से सोचती बार-बार अपने मन को समझाने की चेष्टा करती परन्तु उसका अस्थिर मन कहीं ठिक नहीं पाता। धीरे-धीरे वह अपनी माँ के कथनों पर अपना विश्वास खोने लगी।

अभी तक मस्तानी समझती थी कि पेशवा अविवाहित है। बाजीराव

के नशे ने उसे ऐसा भी सोचने के लिये बाध्य कर दिया था और वह उसी ध्यान में उसे अपना सर्वस्व मान बैठी थी। इतना ही नहीं, उसने इस नशे से अहमद के बाल्यकाल से जुड़ती उस थाती को ठुकरा कर उसे नष्ट कर दिया था। लेकिन जिस दिन उसे विदित हुआ था कि उसका आराध्य विवाहित है और किसी अन्य के प्रेमपाश में आबद्ध है तो उसके हृदय को ठेस पहुँची और उसकी उमंगों ने हठात आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया।

बाजीराव पेशवा का यह विराम अल्प कालीन था। युद्ध ने उसे फिर आवाहन किया। कनातें और तम्बू फिर बँधने लगी। काशी बाई सतारा लौट आईं।

अभी तक तो मस्तानी जैसे तैसे समय काट लेती थी, अभी नासमझी को त्रुटि मान कर संतोष भी कर लेती थी। भविष्य में पेशवा के प्रति न सोचने का दृढ़ संकल्प भी करती थी। परन्तु पेशवा के पूना छोड़ते ही उसके सारे संकल्प और उसके प्रति उदासीनता अनायास विलीन हो गई। प्रेम का वास्तविक रूप निखर आया। दबाई हुई प्रेमाग्नि उभरने लगी लगी। हृदय व्यथित हो उठा, पर उस व्यथा में एक आन्तरिक आनन्द था, एक नवीनता थी और साथ ही जागरूकता भी। वह पुलकित हो उठी और उसका तड़पता मन दूर जाते हुये पेशवा के समीप जा पहुँचा।

उसने सोचा, क्या वह पेशवा से अलग रहकर जीवित रहेगी? उत्तर मिला, कदापि नहीं। उसका जीवन बाजीराव के लिये है। वह उनसे प्रेम करती है और जीवन पर्यन्त करती रहेगी। उसका प्रेम अटल और सत्य है। प्रेम देना जानता है लेना नहीं। वह दृढ़ हो गई और उसकी इस दृढ़ता ने उसकी भावुकता को और भी बढ़ा दिया। उसे अब किसी की चिन्ता न रही। जब ओखली में सिर दिया तो मूसलों का क्या भय? उसकी मां उसका परिवर्तन निरख रही थी। किन्तु उसका कोई बश नहीं थी। यौवन की बातों को वह भूली न थी अतएव उसने कोई हस्तक्षेप करना उचित न समझा और न उसने किया ही।

मस्तानी की मनोकामनायें प्रतीक्षा में जीने लगी।

: १० :

पूना छोड़ने के पहले बाजीराव और उसके छोटे भाई चिमना जी अप्पा के बीच कुछ गुप्त मंत्रणायें हुई और तब दोनों भाई दो मार्गों से मालवा की ओर चल पड़े। चिमना जी पश्चिम से और पेशवा पूरब की ओर से। पेशवा ने अब युद्ध करने की नवीन नीति अपनाई थी। प्रथम आक्रमण। जोरदार आक्रमण और प्रभावोत्पादन आक्रमण। दोनों इसी सिद्धांत के अनुसार शीघ्र हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने के कार्य में जुट पड़े। इस प्रकार का निर्णय बाजीराव ने शाहू की दयालुता और उनकी ढुलमुल नीति को देखकर किया था जो अत्यन्त गोपनीय थी।

पेशवा को विश्वास था कि उसका प्रत्येक कार्य न्याय संगत और जन कल्याणकारी है। अतः जैसे भी हो बैरियों को परास्त कर अपनी वस्तु को अपने अधिकार में करना उचित है। वह उचित अनुचित के पचड़े में पड़ना नहीं चाहता था। वह अपने पचीस हजार सशस्त्र अश्वारोहियों सहित अहमदनगर तथा बरार होता हुआ देवगढ़ की ओर बढ़ने लगा।

उधर अप्पा नर्वदा पार करके आगे बढ़ा ही था कि धार के समीप अमजेहरा नामक स्थान पर, प्रतीक्षा में खड़े गिरधर बहादुर से मुठभेड़ हो ही तो गई, जो मुगल सम्राट द्वारा नियुक्त मालवा का सूबेदार था। केवल दो पहर के घमासान युद्ध ने मुगलों के भाग्य का फैसला कर दिया। गिरधर बहादुर अपने लड़के दया बहादुर सहित मारा गया। मुगल सेना भाग खड़ी हुई और घोड़े, हाथी तथा अन्य बहुत सामान मराठों के हाथ लगा। उस दुबले पतले सदैव रोगी रहने वाले सेनापति चिमना ने अपने पिता और भाई के नाम को उज्ज्वल किया और मराठों के शौर्य में चार चांद लगा दिये।

बाजीराव ने भाई को बधाई देते हुये पत्र लिखा '++++ तुम्हारी अमजेहरा की विजय की सूचना पाकर मुझे अत्याधिक प्रसन्नता हुई। यह स्वामी और पूज्यनीय पिता के आशीर्वाद का फल है। ईश्वर तुम्हे इसी प्रकार भविष्य में और विजय दे। आगे भी तुम्हे इसी भाँति दूरदर्शिता से काम करना है। विशेषतः अब तुम्हे चौकसी से रहना चाहिये। अनुशासन में लेशमात्र भी शिथिलता न हो और न इस जीत पर अहंकार +++++।'

पेशवा आगे बढ़कर देवगढ़ आया। देवगढ़ के स्वामी ने मित्रता का

हाथ बढ़ाया। बाजीराव ने उसे मित्र घोषित किया। वहीं उसे यह भी सूचना मिली कि मुगल सूबेदार मुहम्मद खां बंगश बड़ी तैयारी के साथ इलाहाबाद से बुन्देलखण्ड की ओर चल पड़ा है। उसका इरादा था छत्रसाल को पराजित कर सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड पर मुगल आधिपत्य स्थापित करना। बाजीराव ने तत्काल चिमना जी को पत्र लिख कर पूछा '++++ यदि तुम्हारे पास मेरा आना अनिवार्य हो तो शीघ्र लिखो अन्यथा संवाद न आने पर मैं छत्रसाल की रक्षार्थ बुन्देलखण्ड की ओर कूच कर दूंगा +++++।'

गढ़रा आने पर छत्रसाल द्वारा प्रेषित पेशवा से एक और कासिद मिला। उसने पत्र दिया। 'राजा छत्रसाल द्वारा भेजे गये हो?' बाजीराव ने पूछा।

'जी महाराज।' कासिद ने नत मस्तक हो स्वीकार किया।

'क्या समाचार है?' पेशवा पत्र खोल रहा था।

'बड़ी शोचनीय महाराज।'

पत्र में दो पंक्तियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था:—

जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति जानहु आज।

बाजी जात बुंदेल की, राखो बाजी लाज।

पेशवा बड़ी देर तक सोचता रहा। तदपरान्त उसने फिर चिमना जी को पत्र लिखा, 'मैं छत्रसाल की सहायतार्थ जा रहा हूं। तुम अपनी गतिविधि अब स्वयं अपनी परिस्थितियों के अनुसार जो तुम्हारे लिये अधिक उपयुक्त सिद्ध हो बनाओ ++++।' संध्या होते होते पेशवा की सेना बुन्देलखण्ड पर बढ़ चली

*   *   *   *

बुन्देलखन्ड का स्वामी अठत्तर वर्षीय छत्रसाल, शिवाजी के वीरोचित कार्यों से प्रभावित होकर जीवन के प्रारम्भिक काल ही से मुगलिया सल्तनत के विरुद्ध झंडा खड़ा करके अत्याचारी यवनों से सदैव टक्कर लेता रहा था। उसने बुन्देलों की रक्षा की और औरंगजेब जैसे कट्टर और शक्तिशाली सम्राट की नाकों चने चबवा दिये। उसने जीवन को जीवन न समझ कर सारी उम्र पहाड़ियों और जंगलों में व्यतीत की परन्तु मुगलों का आधिपत्य बुन्देलखन्ड पर नहीं जमने दिया। परन्तु इधर कुछ वर्षों से इलाहाबाद का सूबेदार मुहम्मद खां बंगश ने उसे बड़ी विषम परिस्थितियों में डाल रखा था। आये दिन बंगश की उससे मुठभेड़ हुआ करती और बार बार छत्रसाल

को पराजित होकर इधर-उधर भागना पड़ता। छत्रसाल की वृद्धावस्था छत्रसाल को मुहम्मद खाँ की बहादुरी और योग्यता के सम्मुख नीचा दिखा रही थी। फिर भी वह अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहा। वह अपने जीते जी बुन्देलखण्ड पर यवनों का झंडा लहराया नहीं देख सकता था। वह पराजित होकर भी प्रयत्नशील और अडिग था।

बंगश की बढ़ती शक्ति और वीरता की ख्याति ने बंगश को सोचने के लिये बाध्य कर दिया कि वह बुन्देलखण्ड को भी इलाहाबाद सूबे में मिलाकर आलमगीर औरंगजेब की अपूर्ण इच्छा को पूर्ण करके वर्तमान सम्राट मुहम्मदशाह की मर्यादा को अधिक बढ़ाकर इस्लाम की बुलन्दी का सच्चा सबूत दे। अतः इस बार बड़ी तैयारी के साथ उसने आल्हा-ऊदल की भूमि पर चढ़ाई कर दी थी।

सामना करने के लिये छत्रसाल आये। बंगश ने पराजित किया। छत्रसाल ने पीछे हटकर फिर उत्साह दिखाया। बुन्देलों ने अपने राजा के लिये कुछ उठा न रखा, पर सफलता इस बार भी न मिल सकी। छत्रसाल को फिर पीछे हटना पड़ा। उन्होंने जैतपुर के दुर्ग में आकर शरण ली। दिन बीतते गये और बुन्देलों की दशा बिगड़ती गई। समय बलवान है। उसके सम्मुख सभी को झुकना पड़ता है। भूख से तड़प-तड़प कर मरने से उत्तम था बैरियों से जूझ कर मरना, ऐसा निर्णय उस बुढे केसरी ने किया और तत्काल अपने सैनिकों को ललकारता हुआ दुर्ग के बाहर निकल पड़ा। पर मुट्ठी भर बुन्देले यवनों की विशाल सेना के सामने कब तक टिक सकते थे। फिर भी युद्ध क्षेत्र में छत्रसाल ने दुश्मनों के छक्के छुड़ा दिये। यद्यपि शरीर के अंग अंग पर घाव के निशान बन चुके थे, सारा शरीर लहुलुहान हो रहा था, परन्तु उसकी चमकती तलवार यवनों का बेलौस संहार कर रही थी। बंगश देखकर चकित हो रहा था। अन्त में छत्रसाल के पैर लड़खड़ाये और शिथिल पड़ता शरीर पृथ्वी पर गिर पड़ा। बुन्देलखण्ड का केसरी बन्दी बना लिया गया।

* * * *

बाजीराव पेशवा रात दिन यात्रा करता महोबा आ पहुंचा। गोरखार पर्वत के समीप छत्रसाल के लड़के ने पेशवा से भेंट की और सारी परिस्थितियां बताईं। छत्रसाल के बन्दी होने के समाचार ने पेशवा के क्रोध की आग में तिनके का काम किया। रात भर रुक कर दूसरे दिन वह मुहम्मद

खां के मुक़ाबिले में जा डटने का निर्णय किया।

पूरब का दिव्य पुरुष अपने आगमन की सूचना देने को था। प्रकृति में चेतनता आने लगी। पेशवा अपने शिविर के बाहर किसी गूढ़ चिंता में टहल रहा था। सैनिक अभी विश्राम कर रहे थे। अचानक शिविर रक्षक ने आकर निवेदन किया, 'महाराज से बुन्देलखण्ड के स्वामी राजा छत्रसाल मिलने की प्रतीक्षा में……'

'राजा छत्रसाल !'

'जी महाराज !'

पेशवा स्वयं दौड़ा। सामने बाजीराव को आता देखकर छत्रसाल ने बढ़कर पेशवा को कंठ से लगा लिया। मन गद्‌गद् हो उठा, आँसू नेत्रों से गिरने लगे, मारे आनन्द के छत्रसाल के मुंह से आवाज तक नहीं निकल रही थी। वे अपनी पगड़ी उतार कर पेशवा के पैरों की ओर झुके ही थे कि बाजीराव ने हाथों को पकड़ लिया 'राजा साहब लज्जित न करें, मुंह दिखाने योग्य न रह जाऊँगा।'

छत्रसाल आत्मविभोर हो रहे थे, उनकी प्रतिज्ञा जिसके हेतु उन्होंने सर्वस्व न्योछावर कर दिया, आज बच गई। उनके लिये तो सचमुच गज को भगवान मिल गये थे। उनके मुंह से निकला, 'गज को भगवान इसी प्रकार मिले थे पेशवा साहब। आपने बुन्देलों की नाक रख ली, निर्बल के बल राम मिल गये।' बूढ़े सिंह की आँखों में आँसू चमकने लगे।

बाजीराव उन्हें हाथ का सहारा देकर शिविर में लिवा लाया और आदर सहित आसन पर बिठला कर स्वयं नीचे बैठ गया। 'आज आपकी सेवा में अपने को पाकर धन्य हुआ राजा साहब। यह सौभाग्य सबको प्राप्त नहीं हो सकेगा। यदि गणपति ने चाहा तो आततायी इस भूमि पर फिर कभी पैर नहीं रखने पायेंगे। आप यहां विश्राम करें और मुझे अवसर दें कि आपकी सेवा करके अपने स्वर्गीय स्वामी छत्रपति महाराज शिवा जी की आत्मा को भी प्रसन्न कर सकूं।'

छत्रसाल अपनी गीली आँखों को पोंछने लगे।

जिस प्रकार शिवाजी अपनी बुद्धिमानी से औरंगजेब की आंखों में धूल झोंककर बन्दीगृह से अन्तर्ध्यान हो गये थे, ठीक उसी प्रकार छत्रसाल भी बंगश को चकमा देकर उसके बंधन से मुक्त होकर बाजीराव से आ मिले थे।

दूसरे दिन बाजीराव ने बढ़कर मुहम्मद खां को ललकारा। वह तैयार

था। सामना करने के लिये आगे आया। परन्तु पेशवा के नेतृत्व में बढ़ते हुये मराठे सैनिक क्या बंगश को सीना फुलाते देख सकते थे? उन्होंने निजामुल-मुल्क ऐसे धुरन्धर सेनापति को तो परास्त ही कर दिया था फिर बंगश की क्या बिसात? आकाश में तलवार चमकाकर पेशवा चिल्लाया, हर हर महादेव।' उसके उपरान्त तीस हजार अश्वारोहियों ने कहा 'हर हर महादेव, हर हर महादेव, हर हर महादेव।'

यवनों ने 'अल्ला हो अकबर' के नारे लगाये और जूझ पड़े। बंगश बढ़ा, पेशवा ने दबाया, सेनायें रुकीं, पृथ्वी लाल हो उठी, हजारों मुंह घोड़ों की ठोकरों से इधर उधर लुढ़कने लगे, संध्या होने को आई, बाजीराव ने ललकारा। मराठों ने तांडव नृत्य किया। यवन पीछे दबे, फिर दबे और दब कर बहुत दबे। मराठों की बांछे खिल गईं। पेशवा ने संतोष की सांस ली।

हारा हुआ पठान बंगश पीछे जाकर रुका। दिल्ली, बादशाह सलामत के पास सहायतार्थ सूचना भेजी, साथ ही अपने पुत्र कयूम खां के पास भी। कयूम खाँ एक बड़ी सेना सहित अपने पिताकी रक्षार्थ दौड़ा। पेशवा को गुप्तचरों ने सूचना दी। उसने कुछ क्षण सोचा और इसके पहले कि कयूम खाँ अपने पिता से मिल सके, बाजीराव ने आगे बढ़कर उसे बीच में रोक लिया और ऐसा विकट युद्ध किया कि जब कयूम खाँ मैदान छोड़ कर भागा तो उसके साथ केवल सौ सिपाही थे। अत्यधिक सामान मराठों के हाथ लगा जिसमें तीन हजार घोड़े और तेरह हाथी उल्लेखनीय हैं।

मुहम्मद खाँ बंगश घेर लिया गया। उसकी सारी हेकड़ी भूल गई। बुन्देलखण्ड का स्वप्न तो स्वप्न ही बना रहा अब प्राणों के लाले पड़ गये। न कहीं भागा जा सकता था और न कहीं से सहायता ही मिल सकती थी। पेशवा ने अपनी पुरानी नीति अपनायी। भोजन सामग्री बन्द। मुहम्मद खाँ फिर भी प्रतीक्षा में रहा। परन्तु बेकार। समय के साथ-साथ मुगलों की दशा भी शोचनीय होती गई। पेट किसी की नहीं मानता। बंगश को झुकने के लिये विविश होना पड़ा। संधि के लिये पेशवा से प्रार्थना की। संधि वार्ता के हेतु आये हुये राजदूत के सामने पेशवा ने केवल एक शर्त रखी कि मुहम्मद खाँ सकुशल इलाहाबाद लौटाये जा सकते हैं, किन्तु उन्हें लिखित प्रतिज्ञा करनी होगी कि भविष्य में वे फिर कभी बुन्देलखण्ड पर आक्रमण न करेंगे। बुन्देलखण्ड पूर्णतः राजा छत्रसाल का होगा। मरता क्या नहीं करता। बंगश द्वारा लिखित संधि-पत्र पेशवा के पास आ गया

पठान को इलाहाबाद लौटा दिया गया।

जैसे आकाश में बिजली कौंध कर नभ को आलोकित कर देती है, वैसे ही बाजीराव की विजय ने सारे भारतवर्ष में नवीन चेतना जाग्रत कर दी। देश का कराहता हुआ कण कण एक नई आशा से प्रफुल्लित हो उठा। स्वतन्त्रता के स्वप्न देखने वालों ने घी के दिये जलाये। पेशवा के पास बधाइयों पर बधाइयां आईं। मुगल सम्राट मुहम्मदशाह रंगीले का रंग फीका पड़ने लगा।

जैतपुर दुर्ग में बड़े सज-धज से दरबार लगा। बृद्ध छत्रसाल फूले नहीं समा रहे थे। उन्होंने अपने दोनों पुत्रों से पेशवा के चरण स्पर्श कराये और गदगद कण्ठ से बोले, 'पेशवा साहब, आज से इनकी देख-रेख का सारा भार आप पर है। अब आपही इनके पिता हैं, भाई हैं और संरक्षक हैं। मेरा काम पूरा हो गया। अब मुझे अवकाश चाहिए।'

बाजीराव ने छत्रसाल के चरण स्पर्श करके जगतराज और हृदयमाराज को सदैव छोटे भाइयों की भांति देख-रेख करते रहने की शपथ गृहण की। सारा दरबार जयजयकार से ध्वनित हो उठा। छत्रसाल ने उसी समय बुन्देलखण्ड के तीन भाग किये। बाजीराव को कालपी, हाटा, सागर, झांसी, सिरोंज, कुच, गढ़ा कोट और हृदय नगर प्राप्त हुये।

एक हफ्ते रुकने के उपरान्त पेशवा ने बिदा ली। छत्रसाल ने गले लगाकर बार-बार आशीर्वाद दिया। पेशवा ने बृद्ध की चरण रज ली। बृद्ध रो उठा। बाजीराव की आंखें भी सजल हो आई थीं। वह पूना के पथ पर लौट पड़ा।

मालवा और बुन्देलखण्ड दो भाग मुगलों से मुक्त हो गये।

: ११ :

पूना में जो उत्सव और आनन्द मनाया गया वह अवर्णनीय था। पेशवा के आने पर नगर में दीपावली मनाई गई। दूसरे दिन खुले दरबार में नज़रें पेश की गईं और उसकी वीरता के गीत गाये गये। संध्या को नृत्य का आयोजन था, जिसमें मस्तानी विशेष रूप से आमंत्रित थी।

मस्तानी की बड़ी प्रतीक्षा के उपरान्त बाजीराव आये थे। वह तो बहुत पहले से अपने को प्रकट करना चाहती थी, सौभाग्यवश आज वह अवसर प्राप्त हो गया। अब हिचकिचाहट का प्रश्न नहीं रह गया था। उसने अपने को बड़ी तन्मयता से सवांरा और जब वह संवार कर निकली तो नभ में हंसता चांद छिपने का प्रयास करने लगा। सुन्दरता साकार हो उठी थी। प्रकृति में मस्ती छा गई। मस्तानी लजाती, बलखाती दरबार में आकर बैठी। इधर उधर फुसफुसाहट होने लगी। प्रत्येक की जिह्वा पर नाम था और दृष्टि उसकी ओर। पेशवा ने भी ध्यान पूर्वक देखा।

झिलमिलाते झाड़ों के प्रकाश में नृत्य आरम्भ हुआ। अन्य नर्तकियों के नृत्य समाप्त होने पर अन्त में मस्तानी उठाई गई। पेशवा के पास बैठा हुआ उसका विश्वास पात्र सेनापति पिला जी यादव धीरे से बोला, 'आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह नर्तकी केवल नर्तकी ही नहीं है; वीरता और आखेट में अपनी बराबरी नहीं रखती। रूप और नृत्य का अद्भुत आकर्षण तो है ही। पूना वालों को इस पर गर्व है। नाच देखकर श्रीमन्त प्रसन्न हो उठेंगे।'

बाजीराव ने सिर हिलाय, 'इसका नाम ?'

'मस्तानी महाराज।'

'मस्तानी !'

'जी।'

मस्तानी तैयार खड़ी। मृदंग पर थाप पड़ी—धगतिट धगतिट तगतिट
+

तगतिट कुड़ धातिट धगतिट कतितट गिनतग तिटकता गदि गिन धा
२ ०

कतिटत गिनतग तिटकता गदिगिन धा कतितट गिनतग तिटकता
३ +

गदिगिन धा ऽ धगतिट धगतिट तगतिट तगतिट कुड़ धातिट धगतिट
२ ०

कतितट गिनतग तिटकता गिदगिन धा कतिटत गिनतग तिटकता
३ +

गदिगिन धा कतिटत गिनतग तिटकता गदिगिन धा ऽ धगतिट
२ ३

धगतिट तगतिट तगतिट कुडधातिट धगतिट कतिटत गिनतग तिटकता
+ २

गतिगिन धा कतिटत गिनतग तिटकता गदिगिन धा कतिटत
० ३

गिनतग तिटकता गदिगिन धा ।
+

मस्तानी के नूपुर बोले । आंखें बोलीं । जवानी अलसायी सी, सोई सी थिरक उठी । रंगीन झाड़ों से जलते दीपक निकल कर मस्तानी के रंगीन वस्त्रों पर तैरने लगे । उसने कमर पर बलदिये और लोच खाती हुई भाव प्रदर्शित करने लगी ।

पखावजिया झूम कर आगे बोला :—

व्याकुल राधा श्याम न बूझैं थकित नैन चहुँ खोज रही,
प्रेम बावरी प्रीति हृदय भरी पिय की बतियाँ सोच रही,
इतउत धावत सौंह बुलावत आतुरता मन नोच रही ।
अनायास लखि मोहन की ढिग काहे कहत संकोच रही ।
संकोच रही, संकोच र ॥

धातिट ध तिटधाधा तिटकुधा तिटधग दिगिन ना गिनधित तगेन्न
+ २

धाऽ व्याकुल,, राधा श्यामन बूझें थकित नै नचहुं खोज रही
० ३

ततंत दिगदिगतत दिगदिग दिगदिग दिग दिगतत तदगदी यातक
+ २

थोंऽ ऽग प्रेमवा ऽवरी प्रीतहृ दयभरि पियकी बतियां सोच रही
० ३

धानधि किटधग किड़घेतधि किटधग तकिटथु किटतक धाकत धाऽ
+ २

दिगथै ईदिग थेई तिधा दिगदिग थेई ईतउत धावत सौंहबु लावत
० ३ +

आतुर तामन नोच रही अनाया सलखि मोहन को ढिग का हेक हतंसऽ
२ +

कोचर हीऽसं कोचर हीऽसं कोचर ।
३

मस्तानी सचमुच गोपी बनकर कन्हैया के वियोग में सुधबुध खो चुकी थी। उसके अंग अंग से वियोग की भावना टपकने लगी। सभा मंत्र मुग्ध सी टक टकी लगाये देख रही थी और पेशवा की पलकें तो गिरने का नाम तक नहीं लेतीं। उसका सिर हिल रहा था और वह मस्तानी को अपनी पुतलियों में बैठाये उसकी कला का स्वरूप देख रहा था।

मृदंग पर फिर थाप पड़ी। पखावजी कहने लगा :—

> नाचत छुमछुम नूपुर छन ननन रति स्वरूप मन मोद भरी,
> कहत चाहत सकुचत पगपग मन विह्वल पर धीर धरी,
> सुमुख सयानी प्रेम हिरानी यह विधि हिय की बात करी,
> नैन सैन नूतन भावन पर पिय की मान गुमान हरी, गुमान
> हरी, गुमान हरी।

कतिटधा ऽकत धा कटितधा ऽकत धा कटितधा ऽकत नाचत
\+ २ ०

छुमछुम नूपुर छुन ननन रतिस्वरू ऽपमन मोदभ रीऽ धिटधिट
३ +

धगतिट कुडधातिट धगतिट कुडधेतधा धाधा थुन नाना नाऽ कहतजी
२ ०

चाहत सकुचत पगपग मनविह्व लपर धीरध रीऽ तकतत कतथेई
३ +

दिगितदि गितथेई थुनतक तकथुन तकतक थेइ सुमुख स यानी प्रेम
२ ०

हिरानी यह विधि हियकी बात क रीऽ नड़िन्न धितधित ताड़िन्न
\+

ताधा किड़ धेत धेत धेत धाड़िन धिकिटधिकिट धगनकत ऽधग
२ ०

कतध गनकत तिटतिट धिटधित तड़िन तीकिटतग दिनिना ऽड़धित
३ +

ताडिन्न ऽत धा नैन सै ऽनन् तनभा वनपर पियकी मानगु मान
२

हरी गुमान हरी गुमान हरी।
३

मस्तानी नाची। उसके शरीर का प्रत्येक अंग नाच उठा। कजरारे नेत्रों की गति और गर्दन की हिलन ने तो गजब ही ढा दिया था। कला साकार हो उठी। सौन्दर्य बिखर कर छा गया। लोग अपने को भूल गये। घुंघरुओं की ध्वनि को एक लय में प्रवाह की भाँति समेटती हुई मस्तानी सम पर झम से रुक गई। पेशवा के मुंह से निकल पड़ा 'वाह ! वाह !! मस्तानी, तुमने कमाल कर दिया। तुम तो मुर्दों में भी जान डाल सकती हो। खूब ! तुम्हारा नृत्य क्या है कला का सच्चा स्वरूप। बहुत सुन्दर ! बहुत सुन्दर !'

मस्तानी ने झुक कर सलाम किया 'यह महाराज की कृपा है। मैं किस योग्य हूं।'

पेशवा कुछ चौंका। स्वर जाना पहचाना सा था। उसने मस्तानी की ओर ध्यान से देखा। आँखें वैसी ही थीं। नाक भी वही थी। बाजीराव की दृष्टि और नीचे को आई। उभरे हुए उरोजों पर मोतियों का हार। उसकी आँखें जम गईं। हार वही था। वह बड़ी उलझन में पड़ गया। उसने मस्तानी और अपने शरीर रक्षक की तुलना की। बहुत कुछ समानता थी। अन्तर था युवक और युवती का।

मस्तानी ने पेशवा की चिन्ता धारा में रुकावट डालते हुए कहा 'पेशवा साहब की आज्ञा हो तो कुछ सुनाऊँ।'

'अवश्य। तुम्हें देखने सुनने के लिए जितनी भी रातें हों उसका अन्तिम जोड़ शून्य ही में होगा।'

मस्तानी ने सलाम किया। 'ईश्वर से प्रार्थना करूंगी कि महाराज के ख्यालों में मैं सदैव ऐसी ही बनी रहूं।' और वह तत्क्षण पैर चलाती हुई नाच उठी। उसके मधुर कंठ से सुरीली ध्वनि निकली—

आज पिया सो मान करूं ना।

अपने हिये में उनको सँजो कर तनमन से अभिमान करूं ना।

वह पेशवा के सामने आकर बैठ गई। बिल्कुल समीप बैठी। बाजीराव देखता रह गया। वह भूल गया अपने को। प्रकृति में इतना सौन्दर्य और आकर्षण होना क्या संभव है—इसका अनुमान नहीं लगा पा रहा था। मस्तानी ने अन्तरा गाया।

पी परदेश बसे निसि वासर जोग जुगुत जानू न करूं ना।

अब पेशवा ने ध्यान पूर्वक देखा। मस्तानी के गले में पड़ा हुआ हार उसी का था। उसने सोचा और उसके मस्तिष्क में सारी घटनायें एक एक करके कौंध गईं। भ्रम जाता रहा। उसे विश्वास हो गया कि उसके जीवन

को बार बार मृत्यु के मुख से बचाने वाला युवक वेश में यही मस्तानी थी। मस्तानी ने दूसरी कड़ी कही !

सब कुछ उनका मैं भी उन्हीं की योवन गर्व गुमान करूं ना ॥
आज पिया सो मान करूं ना।

दरबार में सन्नाटा खिंच आया था। लोग झूम रहे थे। मधुर कण्ठ का खिंचाव सभी अनुभव कर रहे थे। पेशवा ने अपने गले का हार निकाल कर उसके गले में डाल दिया। 'यह हार तुम्हारे नृत्य और गीत का पुरस्कार है।' वह मुस्कराया। दूसरे लोग समझने में असमर्थ थे।

मस्तानी ने झुक कर सलाम किया 'सौभाग्य है। पेशवा साहब की दृष्टि से मैं इस योग्य तो बन सकी।' उसने कजरारे नैनों से कटाक्ष किया और मुसकाती हुई झूम से उठ खड़ी हुई। उसने हाथों को कलात्मक रूप से जोड़े और गीत समाप्त किया—आज पिया सो मान करूं ना। वातावरण वाह-वाह की ध्वनि से प्रतिध्वनित हो उठा।

बाजीराव ने मस्तानी को संकेत द्वारा बुलाया। 'कल गीत और नृत्य का फिर आयोजन।'

'जी।'

'जाओ।' पेशवा उठ खड़ा हुआ। दरबार भंग कर दिया गया।

रात अधिक जा चुकी थी परन्तु मस्तानी अपने पर्यंक पर लेटी अब भी गुनगुना रही थी—आज पिया सो मान करूं ना और उसके दोनों हाथों के नीचे दबे हुए पेशवा के हार हृदय से नाता जोड़ने का प्रयास करने लगे थे।

: १२ :

ढाई या तीन प्रहर रात समाप्त हो चुकी थी। नगर में सशस्त्र सैनिक गश्त लगाने लगे थे। रह रह कर इधर उधर कुत्तों के भोंकने की आवाज सुनाई पड़ जाती थी जो बढ़ती रात को और भी भयावह बना रही थीं। मस्तानी की माँ अब भी रेहल पर कुरान रखे पढ़ रही थी। यह उसका नित्य का नियम था। आधी रात के उपरान्त सोती और प्रातःकाल ब्रह्म बेला में उठ जाती थी। वह धर्म को कर्तव्य मानती थी तथा हिन्दू और

मुसलमान दोनों धर्मों पर समान आस्था रखती थी। उसका जीवन पवित्र और विकार रहित था।

बाहर द्वार पर खटखट शब्द से वह चौंकी। उसने ध्यान से सुना बाहर कोई खटखटा रहा था। सोते खिदमतगार को आवाज़ न देकर वह स्वयं उठी और जाकर द्वार खोला। बाहर एक सुन्दर सा बलिष्ठ पुरुष खड़ा था परंतु चेहरे पर कपड़ा लपेटे होने के कारण उसे पहिचाना नहीं जा सकता था।

'कहिये ?' मस्तानी की माँ ने सज्जनता पूर्वक पूंछा।

'कुछ विशेष कार्य है, अन्दर बैठ कर बताना चाहता हूं।'

'आइये।' बिना किसी हिचिक के मस्तानी की माँ ने आगंतुक को अंदर करके किवाड़ बंद कर लिये और अपनी कक्ष में लिवा लाई। आगंतुक ने बैठने के उपरांत पूंछा 'आप मस्तानी की माँ हैं ?'

'जी हां और...आप......'

आगंतुक ने मुंह का कपड़ा खोल दिया।

'पेशवा साहब !' मस्तानी की मां चौंक पड़ी।

'क्यों ?'

'इतनी रात को। महाराज ने बुलवा भेजा होता।'

'कुछ काम ऐसे भी हैं जहां स्वयं की उपस्थिति अनिवार्य है अन्यथा उन कार्यों में सफलता मिलने की कम आशा रहती है।' पेशवा मुस्कराया।

मस्तानी की माँ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अंदर जाकर मस्तानी को जगाया।

मस्तानी ने चकित होकर पूंछा, 'पेशवा साहब ! इतनी रात को अकेले !!' बुढ़िया ने सिर हिलाया 'अकेले बेटी, जाओ मिल लो। तुम से मिलना चाहते हैं।'

मस्तानी के पैर उठने में कुछ शर्माने से लगे।

'जाओ, मिल लो। आये मेहमान की खातिर करना सब से बड़ा धर्म है।'

मस्तानी धीरे-धीरे उठी।

'और हां' उसने जाते हुए लड़की को रोका 'उन्हें यहीं अपने कमरे में लिवाती लाना। मेरा समय क्यों खराब जाय। बैठे-बैठे भजन ही करूंगी।'

मस्तानी सिर हिलाकर चली गई।

इसके पूर्व कि मस्तानी कमरे में प्रवेश करे पेशवा ने सलाम करने के

लिए हाथ उठाया।

मस्तानी ने झुक कर सलाम किया और लज्जित नेत्रों से बोली 'पेशवा साहब मुझे शर्मिंदा कर रहे हैं।'

'शर्मिंदा नहीं बराबरी का नाता जोड़ने का रास्ता खोल रहा हूं।'

मस्तानी की दृष्टि उठी और बाजीराव से जा मिली परंतु तत्काल नीचे को झुक गई। वह बोली 'जब श्रीमंत आये हैं तो मेरे कमरे को भी पवित्र करते जांय। ऐसे अवसर क्या जीवन में बार-बार आते रहेंगे।' मस्तानी के कथन में एक नवीनता थी।

मस्तानी के बहुत कहने पर भी पेशवा पर्यंक पर न बैठ फर्श पर बिछी हुई कालीन पर बैठ गया। सामने मस्तानी बैठी। 'इतनी रात को चोरों की भाँति अपने घर में देखकर तुम्हें बड़ा आश्चर्य हो रहा होगा?'

'नहीं तो। यह जगह ऐसी है ही। लोग इसी तरह यहाँ आया करते हैं। दोष आपका नहीं स्थान का है।'

पेशवा ने गाव के तकिये के सहारे लेटकर मस्तानी को पहिचानने का प्रयत्न किया। उसने उसकी सत्यता को हँसी में उड़ाना चाहा 'चलो दोष का बोझ तो अपने कंधे से हटा, नहीं वे और मर जाते।'

'जी हाँ।' वह मुसकराई। 'पुरुषों के लिये तो यह बायें हाथ के खेल हैं।'

बाजीराव मस्तानी की उपहास भरी मुसकान से अपरिचित न रह सका परन्तु उसे अस्वाभाविक रूप से नहीं लिया। उसने समझाया 'किन्तु यह प्राकृतिक है मस्तानी। दोषी बनना किसे अच्छा लगता है? देखती नहीं? स्वयं जगत का स्वामी भी इस मोह से अछूता नहीं रह पाया है।'

पेशवा के तर्क ने मस्तानी की वास्तविकता को हवा में उड़ा दिया। उसे उत्तर सोचना पड़ा। वह क्षण भर रुक कर बोली 'तर्क द्वारा चाँद के काले धब्बे की व्याख्या नाना प्रकार से की जा सकती है पर क्या उसके प्रकाश पर कभी कालिमा पोती जा सकेगी? तुलना की अलग अलग सीमायें होती हैं महाराज।'

बाजीराव को मस्तानी की कुशाग्र बुद्धि पर आश्चर्य हुआ। उसके मुंह से बरबस निकल पड़ा 'इस छोटी सी उम्र में तुमने बहुत बातें सीख रखी हैं। आकर्षणों का इस प्रकार केन्द्रीयकरण। सभी कुछ तो पाया है तुमने। यदि हो सके तो दूसरों पर भी कृपा करो।'

मस्तानी मुसकराई 'खिल्ली न उड़ाइये। इस योग्य ईश्वर ने बनाया

कब ? जो कुछ है सब आप ही का है ।'

पेशवा ने कोई उत्तर नहीं दिया । चुपचाप उसकी ओर टकटकी लगाये देखता रहा ।

'मेरी ओर क्या निहार रहे हैं ?' मंस्तानी के लज्जित नेत्र पुलकित हो रहे थे ।

'निहार नहीं रहा हूं पहिचानने का प्रयत्न कर रहा हूं कि युवक और युवती मस्तानी में कोई अन्तर तो नहीं । मेरे आने का अभिप्राय यही था ।'

'तो पहिचान लिया या सन्देह है ?'

'पहिचान तो लिया किन्तु जाना जो नहीं ।'

'जानने के लिये आप आये कब थे ।'

पेशवा ने इस बार फिर मात खाई । परन्तु फिर भी उसने बिगड़ी बात को बनाने का प्रयत्न किया 'वैसे सोच कर यही चला था कि पहिचानने के उपरान्त जानने का भी प्रयत्न करूंगा, परन्तु वह हो न सका । खैर, फिर सही । अगले बार इसी विचार से आऊँगा ।' पेशवा अपने को खोलना चाह रहा था ।

'जरूर । घर हुजूर का है । यह बात दूसरी है कि विचारों में स्थिरता हो या न हो ।' मस्तानी छूरे पर शान के बहाने लोहा परख रही थी ।

'उसका निर्णय समय करेगा मस्तानी । कहने से क्या लाभ ?' पेशवा उठ खड़ा हुआ ।

'बैठिये तो सही । अ······।'

'नहीं । अब चलूंगा । कल भी तो आना है ।'

द्वार के समीप पहुँचकर मस्तानी ने धीरे से कहा 'कल श्रीमन्त की दासी प्रतीक्षा करेगी ।'

पेशवा के बड़े-बड़े नेत्र कुछ कह कर मुड़ गये ।

: १३ :

बाजीराव को आज रात फिर शिविर से निकलता देख प्रतिहारियों का प्रधान सतर्क हुआ । पेशवा के समीप आने पर उसने झुक कर तीन बार

सलाम किया और खड़ा हो गया। पेशवा रुका 'कुछ पूंछना है प्रधान ?'

प्रतिहारी की दृष्टि पृथ्वी पर गड़ी हुई थी 'श्रीमान्,' उसने बिनती की 'चिमना जी अप्पा साहब की आज्ञा है कि महाराज की सुरक्षा के लिए अधिक सतर्कता बरती जाय। निजाम से मिलकर कुछ मराठे सरदार षड्यन्त्र रच रहे हैं। महाराज को अकेले जाने देने के लिये······।' वह अगला शब्द कहने में संकोच कर रहा था।

'ठीक है प्रधान, भविष्य में ऐसा न होगा। आगे तुम मेरे साथ-साथ चला करोगे।' पेशवा निकल गया।

बाजीराव के किवाड़ थपथपाते ही द्वार खुल गया। आज खिदमतगार जग रहा था। उसने अन्दर दौड़ कर मस्तानी को सूचना दी। वह तो प्रतीक्षा में थी ही। कमरे से निकल कर आंगन में आई ही थी कि पेशवा आ पहुँचा। वह मुसकराई और उसने झुक कर सलाम किया।

मखमली कालीन पर गाव तकिये के सहारे बैठकर पेशवा ने कक्ष में इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई, 'आज यहां बड़ा परिवर्तन देख रहा हूं। तुमने अपना सामान क्या किसी दूसरे कमरे में हटवा दिया ?'

'जी हाँ। कल विवशता थी लेकिन आज अनर्थ करके पाप की भागिनी क्यों बनती ? ब्राह्मणों के लिए साफ और पवित्र स्थान चाहिये न। हमारी जाति तो घृणित और अपवित्र है। पवित्र को पवित्र की आवश्यकता होती है।'

'तुम तो हिन्दू मुसलमान के भेद को मानती हो ?'

'न मानू तो जाऊँगी कहां। रहना आप के ही समाज में है। फिर मै पतितों में महान पतित वेश्या हूं। मुझे यह भेद बरतना ही होगा।'

बाजीराव ने आँखें गड़ाकर देखा 'भेद चाहे जितना बरतो पर आंतरिक सहानुभूति हिन्दुओं के प्रति होगी।'

'क्यों ?'

'पिता का रुधिर अधिक शक्तिशाली होता है इसलिए। सन्तानें अधिकतर पिता के अनुरूप हुआ करती हैं।'

मस्तानी ने कोई उत्तर नहीं दिया। सिर गड़ाये कुछ सोचती रही। 'पेशवा साहब,' कुछ समय उपरान्त वह बोली 'मेरी माँ कहा करती है कि संसार में हृदय का सम्बन्ध ही पवित्र और सच्चा सम्बन्ध है। जाति और धर्म के द्वारा स्थापित लगाव क्षण भंगुर और अस्तित्वहीन होता है।'

पेशवा को अवसर मिला 'तब तो बिना सन्देह यह अनुमान लगाया जा

सकता है कि तुम्हारी मां की भाँति यदि तुम्हारे जीवन में भी ऐसी घटना घटी तो तुम अपनी मां के ही मार्ग का अनुकरण करोगी। है न ऐसी बात ?' बाजीराव अपने प्रस्ताव को खोलकर नहीं कहना चाह रहा था।

'परन्तु यह कोई' मस्तानी के होठों पर हंसी खेल गई 'आवश्यक नहीं है श्रीमन्त कि जैसी घटना मेरी माँ के साथ घटी थी वैसी मेरे साथ भी घटे।'

'अच्छा थोड़ी देर के लिये मान लो कि ऐसी घटना घट जाय तब ?'

'तब भी यह क्या आवश्यक है कि हृदय के भावों में भी वही प्रेरणा हो जो मेरी मां को थी! हृदय बड़ा विचित्र है महाराज। समझने पर समझा नहीं जाता और नासमझ बनकर कुछ किया नहीं जा सकता।'

ज्यों-ज्यों मस्तानी के साथ बातों का क्रम बढ़ता जा रहा था बाजीराव की गुत्थियां उलझ रही थीं। कभी उसकी बातों और हाव-भाव से पेशवा को ऐसा ज्ञात होता कि मानो वह मस्तानी का सर्वस्व है और कभी वह ऐसी उल्टी-सीधी बेसिर पैर की बातें करने लगती कि उसकी सारी आशाओं पर तुषारापात हो जाता। वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा सोचने लगता और जैसे-जैसे यह सोचने की क्रिया बढ़ती गई मस्तानी के प्रति उसका आकर्षण मृगतृष्णा का रूप धारण कर उसे भरमाने लगा। मस्तानी का भाग्य सूर्य उदित हो रहा था।

पेशवा ने एक बात और मनवाने की चेष्टा की 'और अगर मां की भांति तुम्हारे अन्दर भी वैसी ही प्रेरणा आ जाय तो ?'

'पर अनुभवी व्यक्तियों का कहना है कि प्रेम सम्बन्धित हृदय में उठी हुई भावनायें कुछ प्राकृतिक नियमों से संचालित हुआ करती हैं। उनकी यह दलील किसी अनुभव पर आधारित है। और जहां तक मैं अनुमान सकती हूं सत्य भी है। आपने भी देखा और सुना होगा हृदय का सम्बन्ध चाहे हिन्दू हिन्दू के बीच हो या हिन्दू मुसलमान के परंतु होता है आपसी समानता और स्तर के अनुसार ही। असमान व्यक्तियों में इस प्रकार की घटनायें कम देखने को मिलती हैं और जो मिलती भी हैं उन्हें असाधारण की श्रेणी में रख कर अलग कर देना पड़ता है।' मस्तानी ने आंखें बना कर पेशवा को देखा और फिर बड़े अनूठेपन से अंगड़ाई लेकर वक्ष से खिसकी साड़ी को ठीक करने लगी।

'तर्क द्वारा वास्तविकता की जड़ न खोदो मस्तानी। अन्दर बैठने पर वह दृढ़ ही दिखलाई पड़ेगी। प्रेम हृदय से उठी हुई वह प्रेरणा है जो स्वार्थ-रहित संसार के समस्त भेदभावों की परिधि से बाहर है। प्रेम आदर्श है और

आदर्श ईश्वरी अंश से ओत-प्रोत है। ईश्वर सत्य है, निर्विकार है और सबके लिये समान है। इसलिए अनुभवी लोगों का यह कहना कि प्रेम में भी भेद-भाव की भावना रखना सर्वथा अनुचित है। उनकी दलील उन व्यक्तियों के लिये है जिन्होंने प्रेम के संयोग में वासना का होना नितान्त आवश्यक समझा है।'

मस्तानी भीतर-ही-भीतर प्रसन्न हो रही थी। उसने अपने चेहरे के भाव को बदला, 'परन्तु वासना की नींव पर ही प्रेम की भित्त खड़ी है श्रीमन्त। प्रेम के मूल में वासना ही का आकर्षण है। बिना वासना के प्रेम का कोई अस्तित्व नहीं। उसकी उत्पत्ति ही नहीं।'

'ग़लत है। प्रेम के मूल में वासना नहीं संयोग है। संयोग सृष्टि का लक्ष्य है, प्राकृतिक देन है, सृष्टि स्वयं संयोग की देन है, बिना संयोग के ब्रह्मांड में कोई कार्य नहीं होता, इस कारण वह स्वाभाविक और पवित्र तथा नितान्त आवश्यक है। पर हां, जब संयोग अपनी सीमा से बाहर निकल कर आगे को बढ़ता है बस ठीक वहीं वह वासनामय हो जाता है। कामुकता का रूप धारण कर लेता है जो निन्दनीय, भ्रष्ट और प्रेम के मार्ग से कोसों दूर है।'

'यह ठीक है महाराज! संयोग प्राकृतिक है और वासना अप्राकृतिक, परन्तु यह तो सोचिये कि प्राकृतिक को अप्राकृतिक बनते कितनी देर लगती है? प्रेम का पुजारी संयोग की भावना से प्रेरित होकर वासना में कब लिप्त होकर कामुक हो जाय इसका क्या ठिकाना। संयोग नवीनता उत्पन्न करता है और नवीन सदैव सम्मोहक होता है। सम्मोहन छलना है, अप्राकृतिक है।'

पेशवा मस्तानी की आंखों में आंखें डालकर कुछ समझने की कोशिश करने लगा 'शब्दों का जाल बिछा कर अपने तर्कों द्वारा चाहे जो कुछ सिद्ध कर दो किन्तु प्रेम की पवित्रता का जो रूप मेरे हृदय में अंकित है उसे मिटा न सकोगी। प्रेम निर्मल, निर्विकार और ब्रह्म स्वरूप है। बस केवल यही सीधी सी बात मैं जानता हूं।'

मस्तानी खिलखिलाकर हँस पड़ी 'पेशवा साहब अपनी हार स्वीकार करते हैं और हारने वाले की जैसी दशा होती है उसे महाराज समझते भी हैं।'

'ऊंहू! जो हारा सो जीता। यहां हारने वाली की जीत होती है। जीतने वाला तो नादान समझा जाता है।'

'तो आप हारे।'

'बिल्कुल ! मैं हारा तुम विजयनी हुई ।'

'कब से ?' मस्तानी ने आंखें नचाकर कहा।

'आरम्भ से । जब से तुम युवक के रूप में मेरे जीवन की रक्षार्थ मेरे पीछे-पीछे छाया की भांति घूमने लगी थी।' पेशवा प्रसन्न था।

'इस तरह तो मैं हारी और आप विजयी हुये।'

'किन्तु प्रथम स्वीकार मैंने किया है।'

मस्तानी हँस पड़ी, 'वाह ऐसा भी होता है। हारने वाला दूसरा और स्वीकार करने वाला दूसरा। यह भी खूब रहा। तब तो मुझे भी यह कर देखना चाहिये।' मस्तानी के भोलेपन ने पेशवा के हृदय को आह्लादित कर दिया।

बाजीराव रस में डूबने लगा 'इसे किया नहीं जाता गायिका। वह स्वयं हो जाता है।'

'आप तो अनुभवी व्यक्ति जान पड़ते हैं ? अच्छा तो बताइये मुझे हुआ है या नहीं।'

पेशवा ने अनायास उसका हाथ पकड़ लिया 'मस्तानी······'

वह अपने हाथ को धीरे से खींच कर पीछे खिसक गई।

पेशवा गाव तकिये के सहारे लेट कर कुछ सोचने लगा। मस्तानी ने शर्मीली निगाहों से पेशवा को देखा। पेशवा ने भी देखा और दोनों एक दूसरे को बहुत समय तक मौन होकर देखते रहे। आंखों की प्यास बुझती ही नहीं थी।

मस्तानी ने मौन भंग किया 'आपको जाना भी है।' उसने दरवाजे से बाहर की ओर दृष्टि दौड़ाई 'भोर होने में अब अधिक देर नहीं।'

'मस्तानी !' पेशवा अपने में कह रहा था 'इस शुष्क जीवन में तुम्हें अनायास पाकर मैंने सब पा लिया है। मैं अपने में एक नई स्फूर्ति अनुभव करने लगा हूं। मुझे ऐसा विदित होता है कि तुम्हारा सहयोग मेरे कर्मक्षेत्र की परिधि को अधिक विस्तृत कर देगा। हिन्दू पद पादशाही की स्थापना देखते-देखते होगी। तुम्हारा सहयोग अब मेरे लिये अत्यन्त आवश्यक है। मस्तानी ! तुम्हारे साथ रह कर मैं क्या नहीं कर सकता हूं। असम्भव को सम्भव में परिवर्तित होते देर न लगेगी।' आज मस्तानी को पाकर पेशवा सब कुछ कह डालना चाहता था।

मस्तानी क्या कहती ? उसकी तो वह कल्पना साकार होने जा रही थी

जिसकी कभी स्वप्न में भी आशा नहीं की जा सकती थी। उसे अपनी मां का कथन स्मरण हो आया—प्रेम ईश्वर द्वारा संचालित हृदय की वह पवित्र भावना है जो पवित्रता को ढूंढ़ती हुई पवित्रता में विलीन होकर अमरत्व को प्राप्त होती है। आज उसने पवित्रता पा ली थी। अब विलीन होकर अन्त में अमरत्व को प्राप्त हो जाय, यही उसकी आकांक्षा है।

'समय का······'

पेशवा ने सिर हिलाया और चलने के लिये खड़ा हुआ। द्वार पर रुक कर पेशवा ने पूंछा 'कल मेरी प्रतीक्षा करोगी ?'

मस्तानी ने उत्तर नहीं दिया, केवल उसे देखती रह गई।

पेशवा चला गया।

: १४ :

स्वयम्वर की आदर्श प्रथा भारतीय समाज से उस समय बिदा हो गई, जब देश नवीन आक्रमणों के कारण अलग-अलग भागों में विभक्त होने लगा था। विदेशियों के आक्रमण बढ़ते गये और देश आपसी फूट के कारण एक छोर से दूसरे छोर तक रौंद डाला गया। महाराजाधिराज, परम भट्टारक परम भगवत, महामात्र के स्थान पर जहाँपनाह आलीजाह शाहेजहाँ गरीब परवर और आलमगीर के जय घोषों से हिन्दुस्थान सशंकित हो उठा। यवन राज्य स्थापित हुआ। भारतीय सभ्यता मिटाई जाने लगी।

देश की ऐसी विषम परिस्थिति में जब भारतीय राजनीतिक शक्ति का ह्रास हो चुका था तो उस समय सामाजिक चेतना जीवित रखने के लिये यह अनिवार्य हुआ कि किसी ऐसी नई पद्धति का निर्माण किया जाय जिससे आपसी सद्भावनायें जाग्रत हों और दुश्चरित्रता की बाढ़ से बचकर प्रेम के आदर्श को समझें तथा उन्हीं आदर्शों पर चलती हुई भारतीयता की छाप तथा सभ्यता को जीवित रक्खा जा सके। परिणाम स्वरूप उस काल के महात्माओं और विद्वानों ने एक नवीन पद्धति का सृजन किया। उन्होंने मूल में परिवर्तन करके एकरसता, एकरूपता और अटल प्रेम को जागरुकता

दी। परन्तु ऐसा करने में उन्हें स्त्री पक्ष को अधिक कर्तव्य परायण सहनशील और सर्वस्व देकर भी बदले में कुछ न पाने की इच्छा को प्रोत्साहित किया और उसकी महानता के गीत गाये यद्यपि वे समझते थे कि न्याय की दृष्टि में यह अनुचित है फिर भी वे विवश थे। नारी जो सृष्टि जननी है सम्पूर्ण शक्तियों से पूर्ण है, वह सब कुछ कर सकती है। उसके मार्ग में आती हुई आपदायें उसी प्रकार कुचली जा सकती हैं जैसे हाथी के पैर के नीचे चींटी। अतः समाज को जीवित रखने के लिये सबने एक स्वर से नारी को त्यागमूर्ति कहा। और सौभाग्यवश भारतीय रमणियों ने सहर्ष स्वीकार भी किया।

पुरुष उत्साहित हुये। प्रेम का आदर्श निखरा। समाज में जागृति आई। देश कर्तव्यपरायण होकर नवीन प्रेरणा से अपने को किसी और रूप में देखने के लिये लालायित हो उठा। नारी के बलिदान ने भारतीय आदर्श को अद्वितीय और पवित्र बना दिया। समय के बढ़ाव के साथ देश का वातावरण भी बदला। यवनों को मिटाकर मुक्ति पाने की इच्छा प्रबल हुई। फलस्वरूप वीर माताओं की कोखों से महाराणा प्रताप और शिवा जी सरीखे महापुरुषों ने जन्म लेकर स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपने को न्योछावर कर दिया। समय ने आगे प्रगति की। पेशवा बाजीराव ने अपने पराक्रम से तख्तताऊस पर बैठे मुग़ल सम्राट मुहम्मदशाह को चिन्तित किया।

पर बाजीराव की पत्नी बाजीराव को किसी भी प्रकार सहयोग देने में असमर्थ हो रही थी। वह स्त्रियों के थोथे बलिदानों पर टीका टिप्पणी करती—स्त्रियां पुरुषों के हाथ की कठपुतलियां नहीं हैं ऐसा उनका मत था। उसे अधिकारों और कर्तव्यों का भलीभांति ज्ञान था।

काशी बाई दो दिनों से अपने पति की रात्रि चर्चा देखती हुई भी मौन थी। कारण अभी वह किसी निष्कर्ष पर पहुंच नहीं पाई थी। वैसे हृदय में संदेहात्मक बवंडर तो उठने लगे थे परन्तु छोर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। फिर भी यह समझने के लिये क्या कम था कि एक युवती का पति मिलन की बेला में उससे छिप कर कहीं चला जाता हो और उसकी स्वप्न भरी रातें केवल करवटें बदलते-बदलते समाप्त हो जाती हों। वह नाना प्रकार की चिन्ताओं से जलती भुनती दो दिनों तक इस आशा पर शांत रही कि सम्भवतः पेशवा अपने बाहर जाने का कारण बतलाये परन्तु कारण बतलाना तो दूर आज जब फिर आधी रात के पूर्व वह शिविर से निकल कर बाहर हो

गया तो काशीबाई अपने को न संभाल सकी। उसने बाहर निकल कर पुकारा।

प्रतिहार नतमस्तक खड़ा था।

'पेशवा साहब गये?'

'जी।'

'कहां गये?'

'मुझे कैसे मालूम हो सकेगा महारानी जी। मैं......।'

काशी बाई को अनुभव हुआ कि उसका प्रश्न बेतुका था। उसने बीच में टोका 'रात के समय अकेले......' उसने बात घुमाई।

'जी नहीं। महाप्रतिहार भी साथ है।'

'तो ठीक है। यही जानना था।'

प्रतिहार चला गया। काशी बाई को कुछ सान्त्वना मिली। वह अन्दर आ गई।

* * * *

पेशवा ने थपकी दी। द्वार उन्मुक्त हुआ। महाप्रतिहार बैठक में रुक गया। पेशवा अन्दर चला गया। मस्तानी प्रतीक्षा में थी तो परन्तु आज की प्रतीक्षा में कुछ उदासीनता के भाव झलक रहे थे। बाजीराव ने बैठते हुये अनुभव किया। कल और आज की मस्तानी में अन्तर आ गया था। पेशवा के हृदय में ऐंठन होने लगी। चेहरा एकबारगी उतर गया। उसने गावतकिये के सहारे लेटकर मस्तानी को बूझना चाहा। सम्भवत: मस्तानी के मुखमण्डल पर उभरी हुई विभिन्न रेखाओं से अनुमान लगाना चाह रहा था। पेशवा कुछ कहना भी चाह रहा था, परन्तु कुछ कह नहीं पा रहा था। बातें मुंह तक आकर रुक जातीं थीं। उसे इस समय स्वयं से भय लगने लगा था। उसका चिन्तित चित्त धीरे-धीरे उलझता अपने को अत्यधिक पहेलियों में जकड़ने लगा।

मस्तानी ने मौन भंग किया 'आप का विवाह हो चुका है न?'

'बहुत पहले। क्यों? तुम्हें विदित नहीं?'

'रानी जी भी होंगी?'

'हाँ। यहीं।' पेशवा कारण समझ गया।

'फिर भी उन्हें छोड़कर आप यहां चले आते हैं? वह रोकती नहीं?'

'लेकिन उन्हें मालूम कहां। उन्हें सुलाकर आता हूं।' पेशवा संतोष की सांस लेता हुआ मुसकराया।

मस्तानी अब भी सिर झुकाये थी 'अगर मालूम होने पर पूंछे तो?'

'तुम्हारा नाम बता दूंगा।'

'बस।' उसने पेशवा की ओर दृष्टि उठाई।

'बस क्यों। सम्बंध भी बतला दूंगा। बाजीराव चुहुल करने लगा।

'कोई सम्बन्ध भी हो या यों ही बता दीजियेगा।'

'यदि नहीं है तो होने वाला तो है। ऐसी बातें कुछ बढ़ा चढ़ाकर पहले से बता देना चाहिये।'

मस्तानी को पेशवा की बातें अच्छी नहीं लगीं। वह जानकारी के हेतु गंभीर थी और पेशवा उन्हें हँसी में उड़ा रहा था। उसकी गम्भीरता और बढ़ गई। वह चुप हो गई।

बाजीराव सीधा बैठ गया। 'मस्तानी।'

'कहिये?'

'इधर देखो।'

'क्यों?'

'देखो तो सही।'

उसने सिर उठाकर आंखें मिलाईं। पेशवा हँस रहा था। 'बस इतनी सी बात के लिये यह उलझन? मैं भी कहूं गुलाब का फूल आज मुर्झाया सा क्यों दिख रहा है। मैं······।'

'यह इतनी सी बात नहीं पेशवा साहब। मेरी मां आज बहुत सी ऊपर-नीचे की बातें बतला रही थी। मैं उनसे सहमत हूं।'

'तुम क्या प्रत्येक समझदार को उनसे सहमत होना चाहिये। मेरा अनुमान है कि उन्होंने जो कुछ तुम्हें समझाया या बताया होगा सत्य और उपयुक्त होगा। उन्होंने जमाने के साथ-साथ दुनियां भी देखी है और अनुभव के साथ देखी है परन्तु जहां तक मैं समझता हूं, हमारे तुम्हारे होने वाले संबंध के विषय में उन्होंने जो कुछ अनुमान लगाया—गलत है।'

'क्यों? क्या अलग-अलग प्रेम करने के लिये पुरुषों के पास भिन्न-भिन्न हृदय हुआ करता है?' मस्तानी के कथन में कठोरता थी।

'नहीं, है तो एक। किन्तु उसमें इतनी शक्ति है कि वह कई जनों से एक ही साथ प्रेम प्रदर्शित करके समर्थ हो सके।' वह खुलकर हँस पड़ा,

'बच्चों सी बातें न करो। यदि मैं अपनी स्त्री का प्रेम पा सका होता तो तुम्हारे पास न आता। विवाह होने का यह अर्थ नहीं कि वहां प्रेम का वास्तविक रूप भी दिखलाई पड़े। प्रेम पारलौकिक वस्तु है। सबको सब से नहीं मिला करता। समझी।'

'परन्तु जिस धर्म और समाज में आपका लालन-पालन हुआ है उसमें वैवाहिक संबंध का बड़ा महत्व है। वह दातार है। सुखमय जीवन इसी सम्बन्ध द्वारा बनाया जा सकता है।'

'सम्भव है। तुम्हारे अनुमान को मैं असंगत नहीं कहता, परन्तु इतना मैं जानता हूं कि मेरा पारिवारिक जीवन सुखी नहीं, दुखी है। सम्पूर्ण सुखों के अतिरिक्त भी मेरी आन्तरिक पीड़ा ने मेरा सब कुछ छीन लिया है। ये बड़े-बड़े साहसी कार्य जो मेरे द्वारा होते देखती हो, उन्हें मैं नहीं करता। यह समय का पहिया है जो मेरे पक्ष में घूमता हुआ आगे को बढ़ता चला जा रहा है। पर भाग्य का सितारा कब तक चमकेगा। एक न एक दिन डूबना ही होगा। कर्तव्य विमुख व्यक्ति भाग्य की थाती को संजो कर नहीं रख सकता।'

पेशवा के कथन में व्यथा थी फिर भी मस्तानी ने सुनी अनसुनी कर दिया, 'यह हृदय की पीड़ा नहीं वासना की लिप्सा है महाराज। वासना, ज्ञान-अज्ञान के भेद को नहीं बरतती।'

बाजीराव का वीर रुधिर उसकी असंयत बातों से गतिमान हो उठा 'अपनी परिधि से बाहर न जाओ गायिका। वासना की लिप्सा होने पर मैं यहां नहीं आया, तुम स्वयं मेरे यहां लाई गई होती।'

'अब भी भूल रहे हैं महाराज' मस्तानी के शब्दों में कोमलता आई 'वहां मैं न होती मेरा शरीर होता।'

'मैं भूल रहा हूं या तुम। मुझे उस समय तुम्हारी आवश्यकता नहीं होती। मुझे शरीर चाहिये था और वह वहां होता। होता या नहीं बोलो।'

मस्तानी चुप हो गई। उसने अनुभव किया कि उसका सिद्धांत सारहीन है, पर वह इससे भी सहमत नहीं थी कि उसकी मां ने जो कुछ समझाया था-तथ्यहीन है। पेशवा और उसमें आकाश-पृथ्वी का अन्तर है परन्तु वह प्रेम को क्या करे। उससे पीछा छुड़ाना खिलवाड़ तो है नहीं। परन्तु तत्काल उसके मन में एक प्रश्न उठा। क्या पेशवा भी उसी प्रकार प्रेम करके उसे अपना सब कुछ बना सकेगा? शायद उसके लिये यह कुछ कठिन सिद्ध हो। तब......तब......इसके आगे वह सोचने में असमर्थ हो रही थी। उसने

सिर उठा कर देखा। पेशवा उसकी ओर देख रहा था। उसने फिर दृष्टि नीची कर ली।

बाजीराव उठा, अब मैं चल रहा हूं।'

'क्यों?' मस्तानी के उठते नेत्र कुछ कहने लगे थे।

'क्यों क्या?' बाजीराव मुसकराया 'रात समाप्त होने को आई। तो...।'

'किसी कार्य को करने के पूर्व उसे हर तरह से सोच लेना चाहिये। जल्दी का कार्य अच्छा नहीं होता।' वह कक्ष के बाहर निकला। मस्तानी जब उठ कर खड़ी हुई तो वह महाप्रतिहार के साथ द्वार के बाहर जा चुका था।

सवेरा हो गया। पक्षियों का मधुर कलरव गुंजरित होने लगा परन्तु नींद नहीं आई। वह पलंग पर करवटें बदलती रह गई।

: १५ :

पेशवा दूसरे दिन नहीं आया। मस्तानी की सारी रात प्रतीक्षा में बीत गई। तीसरे दिन बेचैनी बढ़ी। मन कहीं नहीं लगता था परन्तु इस आशा पर कि आज वे अवश्य आयेंगे वह किसी प्रकार दिन काट देना चाहती थी। सूरज डूबा। संध्या आई और फिर रात। चांद हंस कर सोमपान करने लगा। मस्तानी की प्रतीक्षा आरम्भ हुई। वह बैठी थी कक्ष में पर कान थे बाहर द्वार के पास। घरी दो घरी और तीन घरी। रात बीती। सवेरा होने को आया पर पेशवा नहीं आया।

मस्तानी का खाना-पीना दूभर हो गया। मन में तर्क-वितर्क करती नाना प्रकार की बातें सोचती, पर पेशवा के न आने के कारण तक न पहुँच पाती थी। उसकी माँ उसकी परिस्थितियों को समझती हुई भी मौन थी। पांचवें दिन यह अकस्मात् सूचना पाकर कि पेशवा ससैन्य कहीं जा रहा है, उसका हृदय फट कर रह गया। अन्तर की संजोई दुनियाँ अनायास उजड़ गई। होनहार को समझा नहीं जा सकता।

पेशवा को सतारे से शाहू महाराज का आदेश मिला था कि शीघ्र-से-शीघ्र सेनापति त्रिम्बकराव को बन्दी बनाकर सतारा लाओ। विलम्ब न हो।' और

इसी आदेश के पालनार्थ पेशवा अपने भाई चिमना जी सहित गुजरात की ओर चल पड़ा।

खंडेराव की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र त्रिम्बकराव को महाराज छत्रपति शाहू ने सेनापति का कार्य-भार सौंपा था। त्रिम्बकराव और उसकी माँ उमाबाई प्रारम्भ ही से पेशवा की दिन-प्रतिदिन बढ़ती शक्ति और मर्यादा के कारण उससे ईर्ष्या करने लगी थी। अतः त्रिम्बकराव सेनापति बनते ही मां की सम्मति से निजामुल-मुल्क के द्वारा पेशवा के षड्यन्त्र रचने लगा। निजामुल-मुल्क को ऐसे अवसरों की ताक तो थी ही। उसने पूर्ण रूप से सहायता देने की प्रतीक्षा की। उपयुक्त अवसर आने पर एक दिन सतारा से त्रिम्बक राव निकला और निजाम से मिलकर गुजरात में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया।

शाहू ने पेशवा को आदेश देने के पूर्व त्रिम्बकराव को एक पत्र लिखा था, जो इस प्रकार है '+ + + + तुम सदैव राज्य के वफादार सेवक रहे हो और इसी हेतु तुम्हारे प्रति हमारा व्यवहार दयालुता पूर्ण रहा है। परन्तु इधर तुम ने बैरियों से मिलकर कुछ ऐसे कार्य किये हैं जिनकी हमने कभी कल्पना तक नहीं की थी। तुम तो जानते ही हो कि राज द्रोहियों के भाग्य का निपटारा किस प्रकार हुआ करता है। अतः हम तुमसे अनुरोध करेंगे कि पिछली सारी बातों को भूल कर अपने पूर्वजों के कर्तव्यों को स्मरण करके उसी प्रकार राज्य की सेवा में जुट जाओ जिस से राष्ट्र तुम्हारे कार्यों पर गर्व कर सके। तुम्हें दत्तचित्त होकर हमारी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये तथा अधिक से अधिक हमारी भावना को अपने पक्ष में करने की चेष्टा करनी चाहिये। तुम्हें राष्ट्र के बैरियों को नीचा दिखाना है, न कि उनसे मित्रता स्थापित करना। मराठा राज्य का विस्तार करना प्रत्येक का धर्म है। यह चेतावनी तुम्हें इस उम्मीद पर दी जा रही है कि तुम राज्य भक्त के रूप में रहकर राज्य की सेवा करोगे और बेगुनाह रइयत पर अत्याचार न करोगे। + + + + ।' परन्तु जब त्रिम्बकराव पर पत्र का कोई प्रभाव न पड़ा तो विवश हो कर शाहू को बाजीराव के लिये आदेश भेजना पड़ा था।

पेशवा अपने बीस हजार सैनिकों सहित जब बड़ौदा पहुंचा तो सूचना मिली की कि त्रिम्बकराव चालीस हज़ार सेना के साथ दभोई के समीप युद्ध के लिये डटा है। बाजीराव ने पहले शान्तिपूर्वक आपसी मन मुटाव दूर करने के लिये त्रिम्बकराव के पास सन्देश भेजे और उससे सतारा लौट चलने के

लिये कहा, किन्तु त्रिम्बकराव कब सुनने वाला था? उसने पैर के कांटे को निकालने की ठान रखी थी, उसे अपनी शक्ति पर अहंकार था।

विवश पेशवा अपने बीस हजार सैनिकों सहित युद्धक्षेत्र में जूझ पड़ा। परिणाम विदित था। जहां बाजीराव लड़े वहां बैरी विजयी हों। यह असंभव था। त्रिम्बकराव मारा गया। सेना भाग खड़ीहुई। मैदान खाली हो गया। आसफजाह निजामुल-मुल्क का यह भी दांव खाली गया। सेनापति त्रिम्बकराव का पतन इतनी जल्दी इस प्रकार हो जायेगा, किसी ने कल्पना नहीं की थी। घटना क्या घटी जैसे पानी का झपेटा आया और निकल गया। किसी ने जाना और किसी ने जाना तक नहीं।

त्रिम्बकराव की पराजय और पेशवा के लौटने की सूचना पूना निवासियों को मिली। मस्तानी का हृदय खिल उठा। नवीन नवीन कल्पनायें हिलोरें मारने लगीं। बुझते दिये में तेल पड़ जाने के कारण फिर जगमगा उठा था। आशा सृष्टि की वह देन है जो असम्भव को सम्भव में परिवर्तित करने की क्षमता रखती है। आशा हिंडोल में खड़ी मस्तानी लम्बी लम्बी पेंग मारने लगी। सम्भवतः अपना लक्ष्य उसने क्षितिजपार बना रखा था।

मनुष्य सोचता कुछ और होता है कुछ और। ब्रह्मांड का रचयिता बड़ी विचित्र बुद्धि का है। वह किसी का पक्ष तो करता नहीं। जैसा होना है वैसा हो रहा है। पेशवा आया। अश्वों के पैरों से उठती गर्द ने सारे नभ मंडल को आच्छादित कर दिया और जब वह गर्द बैठ कर फिर अपने सहोदरा से जा मिली तो मस्तानी को विदित हुआ कि वहां निशाने गर्द के अलावा और कुछ था ही नहीं। कारवां तो सतारा के मार्ग पर जा रहा था। मस्तानी अपने भाग्य पर हंस उठी। व्यथित हृदय ने हलचल की ठानी परन्तु वह मन को दृढ़ करके मौन हो रही। कल्पनायें उससे दूर हटने लगीं।

आशा बड़ी ठगनी है। कभी तो सुखों का ऐसा चमत्कार दिखाती है कि विश्व का कण कण आनन्द से ओत प्रोत दृष्टिगोचर होने लगता है और पलक गिरते फिर ऐसा रूप बदलती है कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड पिशाचमय हो जाता है। मस्तानी स्थिर चित्त दिन काटने लगी।

: १६ :

पूना में एक वर्ष पूर्व से जो महल निर्मित किया जा रहा था, बनकर तैयार हो गया। अगले शनिवार के दिन उसके गृह-प्रवेश का उत्सव था। शुक्रवार के दिन पेशवा लावलश्कर सहित पूना आ पहुंचा। मस्तानी ज्ञात अज्ञात बनी रही सन्तोष का यही मार्ग था।

पहाड़ी प्रदेशों में यों भी ढलती रात के उपरान्त वातावरण में ठंडक आ जाया करती है। फिर कुवार का महीना तो सर्दी का महीना हो जाता है। रात आधी से अधिक समाप्त हो चुकी थी। शरद की चन्द्रिका प्रकृति में टीस उत्पन्न करने लगी। नवीन ऋतु के साथ सृष्टि में नवीन आकर्षण था। यद्यपि नगर सो चुका था, फिर भी जिन्हें सत्यं, शिवं, सुन्दरम की चाह थी, वे जग रहे थे, और उन्हीं जागने वालों में एक मस्तानी की मां भी थी। रेहल के सामने झुकी हुई वह पुण्य आत्मा प्रभु के चरणों में तन्मय हो रही थी।

अचानक बाहरी द्वार पर थप-थपाहट सुन कर वह चौंकी। उसने ध्यान से सुना द्वार पुनः थपथपाया गया। उसने आंगन में निकल कर पूछा 'कौन ?'

बाहर से धीमी आवाज़ आई, 'मैं हूं, बाजीराव।'

मस्तानी की मां ने बढ़ कर द्वार खोला, 'महाराज।' उसने झुक कर सलाम किया 'आइये।'

पेशवा को 'पेशवा वाले' कक्ष में बैठा कर वह मस्तानी के पास गई। मस्तानी अभी जग रही थी। माँ को सामने आता देख वह उठ बैठी, 'क्या है माँ ?'

'पेशवा साहब आये हैं। कमरे में प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'पेशवा साहब ! आगये !!' उसके मुंह से अनायास निकल पड़ा, पर तत्क्षण उसकी दृष्टि लज्जा के कारण दूसरी ओर हो गई।

मस्तानी की मां सिर हिलाती कक्ष के बाहर हो गई।

मस्तानी पेशवा के सामने आई। सलाम किया और एक ओर बैठ गई। पेशवा देखता रहा कुछ बोला नहीं। मस्तानी भी मौन नीचे दृष्टि गड़ाये रही। क्षण दो क्षण और चार क्षण समाप्त हो गये। न पेशवा बोला और न मस्तानी। अन्त में मस्तानी ने ही सिर उठाया। पेशवा अब भी उसकी

और अपलक देख रहा था। 'क्या देख रहे हैं?' मस्तानी को पूंछते अच्छा लगा।

'बहुत दिनों से नहीं देखा था। वह सब पूरा कर रहा हूं।'

'हूं', मस्तानी ने फिर सिर झुका लिया, 'पूरा हो गया या शेष है?'

'अभी तो शुरुआत है। पूरा होने में समय लगेगा।'

मस्तानी ने कोई उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर के लिये वातावरण में फिर सन्नाटा खिंच गया।

'इधर देखो मस्तानी।'

'क्यों?'

'जल्दी से पूरा कर लें। अभी बातें भी तो करनी हैं।'

मस्तानी को हँसी आ गई। 'चलिये, बातें बनाने में बड़े उस्ताद हैं। मुंह पर मीठी मीठी बातें और आंखों से ओझल हो जाने पर याद तक नहीं रह जाती।'

'यदि याद न होती तो आता कैसे?'

'आये होंगे किसी मतलब से।' मस्तानी कनखियों से देख रही थी।

पेशव हँस पड़ा, 'मतलब से नहीं, निमन्त्रण देने आया हूं। कल गृह प्रवेश के उपरान्त गाना और नृत्य दोनों देखना है। और सा········'

'हुई न मेरी बात। मैंने पहले ही कहा था।'

'अभी हुई कहां? मेरी पूरी बात तो सुन लो। मुझे आज अपने प्रश्नों का उत्तर भी लेना है।'

'कैसा उत्तर?' मस्तानी अनजान सी बोली।

'उस दिन के प्रश्नों का।'

'ओहो! बहुत दिनों उपरान्त महाराज को याद आये। हो जाता है; आपके पास कोई एक काम तो है नहीं। सब तरफ देखना पड़ता है।' उसने व्यंग किया।

'सब कुछ कह लिया?' पेशवा हँस रहा था।

'मैंने वास्तविकता बतलाई है। उसमें कहने न कहने का क्या प्रश्न।' मस्तानी के चेहरे पर बनावटी गम्भीरता थी।

'तुम्हें सम्भवत: विदित न हो; मैं जिस रात यहां से गया था, उसके दूसरे ही दिन छत्रपति का आदेश मिला; और वह जैसा आदेश था कि उसकी तैयारी और परिणाम को तुमने सुना होगा। अब लौटने पर अवकाश मिलते ही हाजिर हुआ हूं।'

'जी हां, जी हां, बहाना रानी जी का और बदनामी मेरे सिर।' वह खुलवाना चाह रही थी।

'तभी तो उनको इस चांदनी में अकेला छोड़कर यहां आया हूं।'

पेशवा की बातें मस्तानी के मन को गुदगुदा रही थीं। फिर भी अपने भावों को दबाकर उसने और गहरे बैठना चाहा, 'यह आप की ग़ल्ती है। किसी के जीवन को अपना जीवन बनाने की प्रतिज्ञा करके इस प्रकार धोखा देना उचित नहीं। ऐसे कार्य निन्दनीय कहे जाते हैं।'

'निन्दनीय संसार की दृष्टि में होंगे, मेरी दृष्टि में नहीं। मैंने प्रतिज्ञा की थी, सही है और निभाने का प्रयत्न कर रहा हूं, यह भी सही है; परन्तु जब दोनों हृदयों का सम्मिलन किसी प्रकार सम्भव न हो सका तो अब निभाने का झूठा प्रयास करके दूसरे तो दूसरे स्वयं को धोखा क्यों दिया जाय। सम्बन्ध और प्रेम में अन्तर है। मैं अपनी पत्नी के लिये सब कुछ कर सकता हूं और सदैव करता भी रहूंगा; पर इस जीवन से मेरा उसका प्रेम का नाता जुड़ सकेगा—असम्भव है।'

'परन्तु जोड़ना तो पड़ेगा ही महाराज, नहीं यह शुष्क जीवन भार स्वरूप हो जायेगा।'

'आया इसी विचार से हूं। देखें भाग्य कहां तक साथ देता है।'

'जी, इस योग्य यदि होती तो सम्भवत: आप कहते नहीं। किसी को अपमानित करने का यह तरीक़ा अच्छा है।'

पेशवा ने हाथ पकड़ लिया, 'मैं तुम से प्रेम चाहता हूं मस्तानी। तुम्हारा प्रेम मेरे जीवन को धन्य कर देगा। बोलो! दे सकोगी?'

मस्तानी ने सिर झुका लिया, 'महाराज मैं मुसलमान हूं और साथ ही वेश्या। आप हिन्दुओं में श्रेष्ठ ब्राह्मण और देश के रक्षक। आपका और मेरा सम्बन्ध असम्भव है। मैं इस प्रकार का कार्य करके आपको समाज में कलंकित देखना नहीं चाहती।'

'समाज के नियम हृदय पर लागू नहीं हो सकते और यदि मेरा समाज इस प्रकार का प्रतिबन्ध लगाता है तो मैं उसकी चिन्ता भी नहीं करता। प्रत्येक की सीमा निश्चित है। जब मैं सीमा में रह सकता हूं तो समाज को भी सीमा में रहना पड़ेगा अन्यथा वह मेरे लिये ग्राह्य न होगा। समाज के प्रति जो मेरे कर्तव्य हैं, मैं कर रहा हूं और जीवन के अन्तिम दिनों तक करता रहूंगा। किन्तु.........'

'किन्तु का वहां कोई स्थान नहीं महाराज। वहां जैसा जो कुछ ...'

'छोड़ो इन बातों को। मेरे लिये ये बड़े महत्वपूर्ण नहीं हैं' और उसने मस्तानी की ठुढ़ी पकड़ कर ऊपर उठाया, 'बोलो, मेरे लिये अपने हृदय में स्थान दे सकोगी।'

मस्तानी झट से उठ कर भागी और आंगन से होती हुई फुलवारी में जा पहुँची। पेशवा भी दौड़ता हुआ उसके पीछे आया। मस्तानी एक अमरूद की डाल के सहारे खड़ी होकर चांद को निहारने लगी। बाजीराव उसके पीछे आकर खड़ा हो गया। मस्तानी ने हाथ उठाकर चांद की ओर संकेत किया 'उस काले धब्बे को आप देख रहे हैं?'

'हां'।

'आज मैंने भी उसी प्रकार आपकी उज्ज्वलता पर कालिमा पोत दी है।'

'उहूं। इस काले धब्बे ने चांद का चांद बना दिया है वरन् उसे कोई देखता तक नहीं।'

'किन्तु है तो काला।'

'कालों के लिये। दूसरों के हेतु वह पवित्र और पूजनीय है और फिर यह चांद' उसने मस्तानी को अपनी ओर मोड़ लिया 'पवित्र और कालिमा रहित दोनों हैं। है न?'

'मैं क्या जानूं।' वह धीरे से एक ओर हो गई, 'आज यहां से जाने का विचार नहीं?'

'जाऊंगा। अभी जल्दी क्या है?'

मस्तानी आगे आगे चलने लगी 'आइये चलिये, सबेरा होने में अब बहुत बिलम्ब नहीं।'

पेशवा को विवश होना पड़ा। द्वार पर पहुँच कर पेशवा रुक गया। 'कल दोपहर के उपरान्त आखेट को चलोगी?'

'क्यों?'

'वैसे ही, तुम्हारे साथ आखेट करने की इच्छा हो रही थी।'

मस्तानी ने स्वीकार किया।

: १७ :

मस्तानी अपने घोड़े पर आरूढ़ पेशवा के साथ उड़ती चली जा रही थी। बीच-बीच मे वह बाजीराव को कनखियों से देख लेती, बोलतीनहीं। पेशवा का हृदय झूम-झूम उठता। वह अत्यधिक प्रसन्न था। कुछ दूर आगे जाने पर मस्तानी ने मुड़ने का संकेत किया और जंगल में मुड़ गई। यह रास्ता नवीन था, पर प्राकृतिक दृश्य इस ओर अधिक मनोरम थे। आगे जंगल में उपयुक्त स्थान समझ कर मस्तानी ने घोड़ा रोका और कूद पड़ी। उसने पेशवा की ओर देखा और खिलखिलाती हुई जंगल में भागी। पेशवा भी घोड़े से उतरा और उसके पीछे हो लिया।

महाप्रतिहार जो पीछे-पीछे आ रहा था घोड़ों को संभालने लगा।

मस्तानी पेड़ों में इधर-उधर कतराती खिलखिलाती दौड़ती चली जा रही थी और बाजीराव पकड़ने का प्रयत्न करने पर भी नहीं पकड़ना चाह रहा था। उसे मस्तानी के पीछे दौड़ना अच्छा लग रहा था। उसमें उसे आनन्द मिल रहा था। अचानक हंसती हुई मस्तानी हरी-भरी दूबों पर लेट गई। बाजीराव भी आया। वह पकड़ने के हेतु बैठना ही चाहता था कि मस्तानी ने दांव दिया। वह झट से उठी और पेशवा को बिराती भग खड़ी हुई। पेशवा दांव खा गया। मस्तानी दस कदम पर जाकर रुक गई, 'बस थक गये, तब आप से पेशवाई हो चुकी।'

'अभी बतलाता हूं। घबड़ाओ नहीं। पकड़ भर पाऊँ।' वह लपका।

'मैं पकड़ी नहीं जा सकती। आप बतलायेंगे क्या?' वह भागी।

पेशवा ने पीछा किया। उसका रोम-रोम रोमांचित हो रहा था। एक एक नवीन सिरहन से अंग अकुला उठे थे। प्रकृति में बुलावा देता हुआ सौंदर्य का सम्मोहन बड़ा मादक होता है। पेशवा ने अब पैर बढ़ाये। मस्तानी धीमे पर आ गई। बाजीराव ने बढ़ कर पकड़ा और उसे अंक में भर लिया। फिर उसके भारी-भारी ओष्ठ कोमल ओष्ठों पर तैरने लगे। वह शान्त थकी-सी पेशवा के बाहुपाशों में अपने को भूल गई। बांध टूट गया, भिन्न अभिन्न हो गये, वियोग के उपरान्त संयोग का आविर्भाव हुआ।

कुछ क्षण उपरान्त मस्तानी सचेत हुई और धीरे से अपने को अलग कर लिया। पेशवा ने संकेत किया, 'चलो सामने उस चट्टान पर बैठेंगे।'

दोनों आकर बैठ गये। पेशवा प्यार से सहारा देकर उसे अपनी जांघों पर लिटा कर निहारने लगा। इस समय की मस्तानी में अवर्णीय मादकता थी। मस्तानी ने देखते-देखते आंखें बन्द कर ली।

'क्यों ?' पेशवा ने पूछा।

'मेरी आँखें बड़ी बुरी हैं। कहीं नज़र लग गई तो ?'

पेशवा खिल गया। उसके ओठ तड़पे और तत्क्षण मस्तानी के कपोलों पर शरारत करने लगे। वह शान्त थी। पेशवा ने कुछ देर बाद सिर उठाया। मस्तानी ने आँखें खोली और पेशवा को देखा। वह मुसकरा रहा था। मस्तानी ने करवट बदली और उसके नेत्र कोरों से आंसू के कण लुढ़क आये। पेशवा सन्न रह गया। जैसे किसी ने उसके हृदय में कुछ चुभो दिया हो, 'मुझसे कुछ त्रुटि हो गई मस्तानी ?'

वह आँखें पोंछती सीधी हो गई 'नहीं तो।'

'फिर......।'

'ये खुशी के आँसू हैं महाराज। मेरे भाग्य ने आज सीमा उल्लंघन कर दिया है। इस वेश्या......।'

बाजीराव ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया 'बस। आगे नहीं। भविष्य में फिर ऐसी बात मुंह से न निकले। आज से मस्तानी मस्तानी नहीं, पेशवा की पटरानी हो गई है न। ध्यान है ?'

'परन्तु पटरानी बनाने वाली पटरानी बनना पसन्द करे तब तो।'

'अब उसकी पसन्दगी कहां रही। अब जैसा मैं चाहूंगा वैसा होगा।'

'इतनी जल्दी !' उसने आँखें नचाई।

'शुभ काम में जल्दी ही करना चाहिये। देर करने में पीछे पछताना होता है।'

मस्तानी आगे कुछ न कह कर टकटकी बांधे उसे देखने लगी। पेशवा उसके बालों में उँगली नचा रहा था, 'मैं सोचता हूं कल दरबार में इसकी घोषणा कर दूं और फिर पूरी तैयारी के साथ तुम्हें महल में ले चलूं। अब अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता।'

'ऊंहूं।' मस्तानी ने सब पर पानी फेर दिया।

'ऊँहूं क्या ?'

'आपका समाज इसे पसन्द नहीं करेगा और विशेषकर आपका परिवार तो इसे सहन कर ही नहीं सकता। अपने स्वार्थ के लिये दूसरे के जीवन तथा कुल धर्म को बिगाड़ना महान पाप है। मैं इस प्रकार का कार्य कदापि नहीं कर सकती। प्रेम को कलंकित करके उस पर कालिख नहीं पोतना है। उस धरोहर के रूप में संजो कर ही अप्राप्ति में सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति का अनुभव करना है।'

'किन्तु मैं समाज और परिवार से डरता कब हूं। समाज और परिवार दोनों ही मेरे द्वारा जन्मे हैं। दोनों की उत्पत्ति मेरे सुखों के लिये है और दोनों रक्षित भी मुझी से हैं। मेरी प्रसन्नता में उनकी प्रसन्नता है, न कि उनकी प्रसन्नता से मेरी। समझीं।'

'आप सब कुछ हैं, इससे कोई इन्कार नहीं करता और आप सदैव रहेंगे यह भी सर्वविदित है, पर इतना होने पर भी आप उन स्वयं निर्मित सामाजिक विधानों का उल्लंघन करने में समर्थ हो सकेंगे—इसे सम्भवतः आपने ध्यान से सोचा नहीं।'

'सब सोचा है। जीवन को जीवन चाहिये–पवित्र जीवन। बस इतना ही पर्याप्त है। अधिक माया की संसार में कामना करना मूर्खता है। फिर मेरा जीवन।' उसने दोनों हथेलियों से मस्तानी के कोमल कपोलों को आबद्ध कर लिया। उसका संकेत मस्तानी के लिये था; 'तो अद्वितीय है। इसकी प्राप्ति के आनन्द में केवल समाज के लिये ही नहीं वरन सारे राष्ट्र के हितार्थ मैं वह कार्य करूंगा जो सदियों तक भुलाने पर भी नहीं भुलाया जा सकेगा।'

पेशवा की हथेली पर फूल जैसी अपनी हथेलियों को रखकर वह सहलाने लगी। उसके पास उत्तर होने पर भी वह कहने में असमर्थ थी।

कर्तव्य और प्रेम–दोनों आकर्षणीय और दोनों कठोर हैं। विरलों को को ये प्राप्त हुये हैं और जिन्हें प्राप्त हुये हैं वे जीवन पर्यन्त निभा भी सके हैं, इसकी जानकारी के हेतु परिश्रम करना होगा। दोनों अपने क्षेत्र की सीमा नहीं रखते और जहां इन दोनों का एकत्व हो जाय, वहां व्यक्ति विशेष की कैसी स्थिति होगी—अकल्पनीय है। ठीक ऐसी ही स्थिति इस समय मस्तानी की थी। पेशवा का प्रेम त्यागा नहीं जा सकता और कर्तव्य को अग्राह्य कह कर तिलांजलि नहीं दी जा सकती। एक व्यक्तिगत सुखों का द्योतक था तो दूसरा समाज और उस विशेष समाज पर अवलम्बित विधानों का पोषक। मस्तानी कुछ समझ नहीं पा रही थी।

कुछ क्षण उपरान्त मस्तानी बोली, 'मैं बड़ी दुविधा में पड़ गई हूं महाराज।'

'इसका कारण मैं समझता हूं। जब तक बाजीराव 'महाराज' के रूप में रहेंगे, दुविधा ऐसी ही बनी रहेगी। 'महाराज' के स्थान पर कुछ और कह कर देखो, सब ठीक हो जायेगा।' पेशवा मुसकराया।

'जी। मेरे बदलने से अगर महाराज बदलते तो कब को बदल दिया

होता। महाराज केवल मेरे ही महाराज नहीं हैं, वे सम्पूर्ण राष्ट्र के हैं, न।'

'सम्भव है; किन्तु मस्तानी के तो सेवक ही हैं।' और उसने उस के कपोलों को चूम लिया।

मस्तानी मुंह बनाती उठ बैठी, 'अब मैं आप से नहीं बोलूंगी।'

'क्यों?'

'तबीयत। नहीं बोलूंगी।'

'और अगर मैं बोलना चाहूं तो।'

'तब भी मैं नहीं बोलूंगी।'

पेशवा ने उसे पकड़ कर भुजाओं में जकड़ लिया। वह उसके चौड़े वक्ष में सिमट गई। कुछ समय उपरान्त वह धीरे से बोली, 'चलिये। देर हो जायगी।'

दोनों उठ खड़े हुये।

घोड़े पर चलते हुये पेशवा ने अनायास पूंछ लिया, 'वह शैतान अहमद भी मेरे पीछे खूब पड़ा? शायद वह तुमसे प्रेम करता था। कुछ है न ऐसी बात?'

'वह क्या, मैं स्वयं उससे प्रेम करती थी।'

'अच्छा! तभी तुमने मुझ से प्राण भिक्षा की याचना की थी।'

'बिल्कुल।'

'फिर भी वह तुम्हारा साथ छोड़ कर भाग गया?'

'क्या करता? विवशता सभी कुछ करा देती है। आप बीच में जो आ धमके।'

'हूं, तो तुम्हारे बहुरुपियेपन का उसे भी ज्ञान हो गया था।'

'इसमें बहुरुपियापन क्या है? प्रकृति में सुन्दर-असुन्दर का भेद बना क्यों? अच्छी वस्तु सभी को प्रिय है।' उसने तिरछे नेत्रों से पेशवा को देखा।

'तो तुम अच्छे बुरे के हिसाब से प्रेम करती हो?'

'करती ही नहीं, डंके की चोट पर कहती भी हूं।'

'तब तो मैं भी थोड़े ही दिनों का मेहमान हूं?'

'मेहमान समझिये या.............।'

'या गुलाम।' पेशवा ने बीच ही में पूर्ति कर दी।

दोनों ही ठट्ठा मार कर हंस पड़े। 'जो मुंह में आता है वही कह डालते हैं।'

'मैंने कुछ गलत कहा है ?'

मस्तानी मुंह बिराकर हंसने लगी, 'अहमद आजकल निज़ाम की सेना में है और आप से प्रतिकार लेने की धुन में।'

'मैं समझता हूं। तुम्हे न पाने का क्रोध मेरे ऊपर !'

'वह इस्लाम का कट्टर समर्थक है। हिन्दू उसकी निगाहों में काफिर हैं।'

'यह मैं उसी दिन समझ गया था। लेकिन यह उसकी भूल है। खैर।'

फिर कुछ दूर तक दोनों मौन चलते रहे। पूना समीप आने पर पेशवा बोला, 'तैयार रहना। कल शनिवार बाड़ा में आना है।'

मस्तानी अस्वीकारोक्ति से सिर हिलाने लगी; परन्तु उसके पीछे स्वीकृति की स्पष्ट आभा झलक रही थी।

: १८ :

विभिन्न प्रकार के लटकते हुये-बड़े बड़े झाड़ों में रोशनी जगा दी गई थी और उनकी सतरंगी ज्योति लाल किले के उस दीवाने खास में स्वर्ग की छटा उत्पन्न करने लगी थी। मध्य में कुछ पीछे हटकर श्वेत संगमरमर के चबूतरे पर रखा हुआ तख्त ताउस अपनी सुन्दरता और अमूल्यता दोनों का प्रमाण दे रहा था। सिंहासन में जड़े मणि माणिक्य और उनके अनूठे कटाव द्वारा उनसे टकराकर फैलती हुई आभा वहां बैठे हुये मुगलिया सल्तनत के अमीर उमरावों को चकाचौंध कर रही थी।

अचानक प्रतीक्षा में बैठे लोग हड़बड़ाये और सुव्यवस्थित रूप से खड़े हो गये। बअदब होशियार की आवाज समीप आती गई और मुगल सम्राट मुहम्मदशाह रंगीला ने पदार्पण किया। प्रत्येक ने झुक कर तीन बार सलाम किया। मयूर सिंहासन पर सम्राट ने आसन ग्रहण किया और फिर चारो

ओर दृष्टि दौड़ाई तदुपरान्त बैठने का संकेत किया। लोग बैठ गये। नृत्य आरम्भ हुआ। सुन्दरियों के नूपुरों में बंधी कला थिरकी। यौवन निखर कर छलकने लगा सुन्दरता में चार चाँद लग गये। महफिल झूम उठी। तड़प उठी। परन्तु मुहम्मदशाह के लिये यह सब पुराना हो चुका था। उसे तनिक भी आनन्द नहीं मिल रहा था। सुन्दरियों की सारी अदा और लोच उसके लिये बेकार थी। मनोरंजन हीन खिन्न चित्त सम्राट केवल ईरानी शराब के सहारे बैठा कुढ़ रहा था।

आधी रात होने को आई, शराब उसका कहां तक साथ दे सकती थी? उसे झुल्झुलाहट हुई। वह गावतकिये के सहारे सीधा हो गया। वजीर कमरुद्दीन नतमस्तक खड़ा हुआ। नृत्य बन्द हो गया। मुहम्मदशाह ने घूरा। वजीर को भांपते देर न लगी, 'जहांपनाह की इज़ाज़त चाहिये। बड़ी नायाब चीज़ बुलाई है ग़रीब परवर। हुजूर.......'

'तुम बिल्कुल कम अक्ल हो कमरुद्दीन खां। अभी तक तुम्हारे मुंह में ढक्कन लगा था?' बादशाहसलामत की प्रसन्नता चेहरे पर दृष्टि गोचर होने लगी थी, 'इन चीजों के लिये भी इज़ाज़त की ज़रूरत पड़ती है। जल्दी करो। मेरी रात खराब जा रही है और तुम इज़ाज़त के लिये बैठे हो।'

वजीर ने पीछे इशारा किया। पतली सी कमल जैसी नूरबाई सामने आई। सलाम किया और खड़ी हो गई। रंगबिरंगे प्रकाश में वह स्वर्ग की अप्सरा-सी प्रतीत होती थी। अंगों की कोमलता और उन पर अल्हड़पन से पहने हुये वस्त्र उस सुकुमारी पर बोझ हो रहे थे। सुन्दरता और सुकुमारता का विचित्र मिलाप था। नूरबाई सचमुच नूर थी। मुहम्मदशाह ने देखा और देखता रह गया। उसके जीवन में अनगिनत रूपसी आईं थीं पर आज जैसा सौन्दर्य उसे पहले देखने में नहीं मिला था। उसकी आंखें पथरा-सी गईं। वह नूरबाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखना चाहता था।

नूरबाई झुकी, गर्दन उठी और शाहंशाह की निगाहों से जा टकराई। मुहम्मदशाह ने निकट आने का संकेत किया। वह तख्त ताउस के समीप जाकर खड़ी हुई और झुक कर मुजरा किया।

'मैं तुमसे बड़ा खुश हुआ।' मुहम्मद की कामुक दृष्टि सौन्दर्यपान करने में संलग्न हो गई।

नूरबाई का रोम-रोम हर्षोत्फुल हो गया। उसने फिर झुक कर सलाम किया, 'आलीजाह ने मुझे सभी कुछ बख्श दिया।' उसने कनखियों से देखा और पुनः पृथ्वी की ओर देखने लगी।

'तुम्हारा नाम ?'

'नूराबाई, जहांपनाह ।'

'सुभान अल्लाह । वाकई बहिश्त का नूर ज़मीन पर उतर आया है ।'

उसने फिर सलाम किया ।

'शुरू करो नूर, दिल बड़ा बेचैन हो रहा है । इन हरामजादियों ने मेरा नशा हिरन कर रखा है । शुरू करो ।'

नूरबाई ने अँगड़ाई ली । हाथों ने भाव दिखाये । नूपुरों में ठुमुक हुई । पैरों में थिरकन आई । कमर पर बल पड़े और वह नाचती हुई गाने लगी, 'हक़ीक़त को समझा दिया मैंने दिल से यह मानो न मानो तुम्हारी खुशी है ! मुहब्बत का रास्ता दिखाया है ग़म से यह मानो न मानो तुम्हारी खुशी है !!' सारंगी वाला अपनी उंगलियों को तैराता वातावरण में थिरकन पैदा करने लगा । तबलिया भी आज अपनी सारी उस्तादी के हाथ दिखा देना चाहता था । सम्राट के सम्मुख आने का सौभाग्य विरलों को नसीब होता है । यह किस तपस्या का फल है उसे क्या विदित ?

बेसुध यौवन से लिपटे हुए अद्वितीय सौन्दर्य सहित कलात्मक संगीत तथा नृत्य के संयोग ने मुहम्मदशाह रंगीले को इस समय सचमुच रंगीला बना दिया था । नूरबाई ज्यों-ज्यों ग़ज़ल को चढ़ाती-उतारती अपने जादू भरे भावों से प्रदर्शित करती थिरकती जाती, त्यों-त्यों उसका सम्मोहन मुहम्मदशाह पर छाता चला जा रहा था । सम्राट बिल्कुल सुधबुध खो चुका था । शराब के दौर में अधिकाई हुई । नूरबाई ने ग़ज़ल समाप्त की और झुककर सलाम किया ।

रंगीला सम्राट उछल पड़ा । उसकी आवाज लड़खड़ा रही थी, 'वल्ला... ा ह..कमा...ल...किया नू...र...बा...ई..मेरी...जिन्द...गी...में तु... म ने जा...न डाल...दी. हु...स्न भी...क...या...म...त का पाया... है औ...र अन्दा...ज...वाह...खूब...नूर...बा...ई.. दूस...री...ची... ज़ सु...ना...ओ ।' उसने प्याले के लिए हाथ बढ़ाया । भरा प्याला तैयार था । वह गट-गट पी गया ।

नूरबाई ने दूसरी ग़जल आरम्भ की और अभी पहली कड़ी समाप्त की होगी कि जहांपनाह तख्त ताऊस में औंधे पड़ गये । गीत रुक गया । बादशाह सलामत लाद कर हरम में पहुँचाए गये । महफिल उठ गई ।

लाल किले के उस रंगीन वातावरण में जब एक ओर नूरबाई सुरीली तान से सब को मस्त कर रही थी तो दूसरी ओर दीवाने खास से कुछ ही दूरी

पर औरंगजेब द्वारा स्वयं के लिए निर्मित उस संगमरमर की मस्जिद के भीतर एक कोने में बैठे निज़ामुल-मुल्क और सादत खां अत्यंत गोपनीय मंत्रणायें कर रहे थे। यद्यपि दोनों अपने-अपने स्वार्थ से प्रेरित थे, पर उस स्वार्थ की सिद्धि का मार्ग एक ही था। एक तीर से दो शिकार तथा अलग - अलग शिकार के लिए अलग-अलग मालिक—इस प्रकार की कुछ वार्ताएं चल रही थीं। सादत खां ने आगे पूछा 'लेकिन नादिरशाह को कैसे बुलाया जाय?'

निजाम मुस्कराया 'इसे भी सोचना होगा? मुग़लिया सल्तनत खतरे में है। मराठों की ताक़त बढ़ रही है। बाजीराव कब दिल्ली पहुँच कर इस्लाम की बुनियाद को मिटा दे, कहा नहीं जा सकता। इतना नादिरशाह को लिख देना काफी होगा।'

'ऊंहूं।' सादत खां को बात जँची नहीं। उसका स्वार्थ खटाई में पड़ गया, 'तब तो बादशाह सलामत और नादिरशाह में दोस्ताने का रिश्ता क़ायम हो जावेगा आसफजाह, फिर मक़सद कहां पूरा हुआ। बुलाने का यह तरीक़ा बिल्कुल ग़लत है।' सादत खां ने बात काट दी।

खुर्राट निज़ाम ने फिर पट्टी पढ़ाई 'आप समझे नहीं खां साहब, ये मशविरे तो हमारे आपके बीच के हैं, बादशाह सलामत या किसी दूसरे को क्या इल्म? नादिरशाह से बातें हमारी होंगी। खत हमारे जायेंगे और उनमें जहांपनाह की कमज़ोरी और बदइन्तज़ामी का ज़िक्र होगा। खत किताबत के दौरान में यह साफ़ तौर से ज़ाहिर कर दिया जायेगा कि मुहम्मदशाह ऐसे नामाक़ूल बादशाह से मुग़लिया सल्तनत और इस्लाम की हिफाज़त नहीं हो सकती। इन दोनों की बुलंदी के लिए किसी तीसरे शख्स को तख्त पर बैठाना होगा। इन्शाअल्लाह उस वक़्त आप अपनी तदबीर में कामयाब हो जायेंगे।'

सादत खां को यह बात पसन्द आई। उसका मन आल्हादित हो उठा 'हां, इस तरह तो ....'

'अजी जनाब जिस तरह बाजीराव मेरे लिए कांटा हो रहा है उसी तरह आप के लिये मुहम्मदशाह, क्या मैं इसे समझता नहीं। आप देखते जाइये, मैं इन दोनों विषैलों को इस तरह मरवाऊँगा कि लकड़ी भी न टूटे और काम भी बन जाय। समझे? मराठे मेरे कब्जे में होंगे और बादशाही आप के इशारों पर नाचेगी।' निज़ाम ने झुक कर बाहर की ओर देखा 'सहर का वक़्त करीब है।'

'तो कल फिर यहीं बैठा जाय?' सादत खां के दोनों हाथों लड्डू थे।

'बिल्कुल! अभी बहुत से मामले बाक़ी हैं।'

दोनों उठ गये।

: १९ :

मुहम्मदशाह की नींद टूटी और जब दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर तैयार हुआ तो उस समय दिये-बाती का समय हो चला था। 'हसीनगाह' में बैठते ही उसे रात के नृत्य का ध्यान आया और नूरबाई उसके विचारों में कौंध गई। उसने ताली बजाई। लौंडी नतमस्तक उपस्थित थी। 'नूरबाई मय साजोसामान के।'

'जो हुक्म आलीजाह।'

नूरबाई ने 'हसीनगाह' में प्रवेश किया और झुक कर तीन बार सलाम कर खड़ी हो गई। बादशाह मखमली गावतकियों के सहारे किन्हीं विचारों में खोया हुआ था—जान न सका। नूरबाई ने अपने कोमल स्वरों से उसके विचारों को झंकृत किया 'जहांपनाह की खिदमत में······।'

'नूरबाई! तुम आ गई!! बड़ी बेसब्री से इन्तजार कर रहा था। आओ आओ। मेरे करीब आओ।'

नूर उसके समीप जाकर बैठ गई। मुहम्मदशाह देखता रहा। वह कुछ सहम सी गई। उसने आँखें नीची कर लीं, 'आलमपनाह ने' वह बोली 'लौंडी की तक़दीर को इस तरह पलटा दिया है कि वह सुबहे में पड़ गई है। उसे सब कुछ ख्वाब जैसा दिख रहा है।'

रंगीला हँस पड़ा 'चलो सुनाओ।'

नूरबाई झूम से खड़ी हो गई 'जहांपनाह की इज़ाज़त हो तो हिन्दी के पद सुनाऊँ।'

'कन्हैया के?'

'जी ग़रीब परवर।'

'जरूर। मैं बहुत पसन्द करूँगा।'

नूरबाई गाने लगी।

कान्हा मोहे चिढ़ावत सखियां।

लोकलाज कछु बूझत नाहीं बैरिन मोरि भई अब अखियाँ॥

नूरबाई के भावों ने—गोपी का उसकी सखियों द्वारा चिढ़ाया जाना तथा उसका सखियों को भला-बुरा कहकर बाद में कृष्ण से भेंट होने पर उन्हें मीठा उलहना देना इत्यादि चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से किये। उसने वास्तविकता को पूर्ण रूप से दरसा दिया। सम्राट झूम उठा। उसे ऐसा विदित होने लगा था मानो नूरबाई उसे कन्हैया के रूप में मानकर अपने

मीठे उलहने से प्रेम जता रही हो। उसका अंग-अंग रोमांचित हो रहा था। नूरबाई के भजन समाप्त करते ही वह कह उठा 'बहुत खूब! बहुत खूब! तुमने तो क़यामत बरपा कर दी नूरबाई! वाह!'

नूरबाई ने सलाम किया। वह दूसरा गीत सुनाने के लिये सारंगी वाले की ओर मुड़ी।

'बस नूर। मेरे पास आओ।'

वह समीप जाकर बैठ गई।

सम्राट ने संकेत किया। तबलिया और सारंगी वाले बाहर हो गये। उसने ताली बजाई। लौंडी हाजिर हुई, 'शराब।' उसके मुंह से निकला। फिर उसने नूरबाई की ओर देखा, 'आज मैं तुम्हारे हाथ से शराब पिऊँगा नूर।'

'यह मेरी खुद क़िस्मती होगी आलमपनाह।' वह सुराही से शराब उड़ेलने लगी।

मुहम्मदशाह प्याला एक घूँट में साफ कर गया, 'नूर!'

'जहाँपनाह।'

वह थोड़ी देर चुप रहा।

'मेरे हरम में तुम्हारा होना बहुत ही जरूरी है।'

'बादशाह सलामत के लिये यह कौन सी बड़ी चीज है। लेकिन······'

वह रुकी।

'लेकिन क्या नूरबाई?'

'जहाँपनाह ने शायद गौर नहीं किया। मैं तवायफ हूं। मेरी औकात आलीजाह से छिपी नहीं है। हूजूर को·········'नूरबाई के कथन में भोलापन था।

मुहम्मदशाह ठट्ठा मार कर हँस पड़ा। उसने लबरेज प्याले के लिये हाथ बढ़ाया। नूरबाई ने थमा दिया। वह पी गया। 'नादान खूबरू' उसने नूर की ठुढी पकड़ कर हिलाई, 'हुस्न भी कहीं औक़ात मानता है। हुस्न के खातिर यह सल्तनत बनी है और एक दिन इसी पर निछावर भी हो जायेगी। फिर औक़ात बे औक़ात का क्या सवाल?

'जहाँपनाह की मुहब्बत किसी औरत के लिये कितनी बड़ी चीज हो सकती है, इसे लफजों में नहीं बयान किया जा सकता। मैं अपनी तक़दीर को क्या कहूं। मैं तो समझ ही नहीं पा रही हूं और सिर्फ इसी डर से कि यह नासमझी कहीं आगे चलकर समझने के लिये उतावली होने पर

भी अगर कुछ समझ न सकी तो मुहब्बत को नापाक करने के अलावा और कोई सूरत न रह जायेगी।' नूरबाई बड़ी दूर तक पहुंच गई थी। उसके कथन में पवित्रता थी।

कामुक कामुकता की बात करता है, ज्ञान और दर्शन की नहीं। प्रेम का महत्व वह नहीं जानता और जानना भी नहीं चाहिये। उसे तो अतृप्त वासना की तृप्ति करनी होती है जो नित्य नवीनता का सृजन किया करती हैं। फिर मुहम्मदशाह ऐसे कामुक सम्राट के लिये जो अपनी सीमा जानता ही न हो, उसे नूरबाई की बातों को भांपते देर न लगी। उसने अनुभव किया कि नूर वेश्या होते हुये भी हृदय की निष्कपट और भोली है। उसने उसको भुलावा दिया 'मुहब्बत, और तुम से नापाक हो,' वह बनावटी रूप से हँसा 'तब तो बेड़ा ही ग़र्क़ हो जायेगा। अजी, यह क्यों नहीं कहती कि जिस दिन तुम समझने की कोशिश करने पर भी न समझ सकोगी उस दिन इसका एक नया जलवा होगा और अगर कहीं समझ लिया तब तो मुहब्बत की एक ऐसी लीक बनेगी जिसे अवाम मिसाल की शक्ल में सदियों तक पेश करता रहेगा।'

नूरबाई निरुत्तर थी। मुहम्मदशाह ने उसका हाथ पकड़ लिया और अपनी ओर खींचना चाहा।

'आलमपनाह......'

'कहो।' उसने हाथ छोड़ दिया।

'मैं हुजूर......।'उसे आगे कहने का साहस नहीं हो रहा था।

'कहो नूर। कहो। मैं हुस्न की क़दर करता हूं, साथ ही मुहब्बत की भी। इनको ताकत से हासिल करने में कोई लुत्फ नहीं। ताक़त से हासिल करने वाली और चीजें होती हैं। मुझे यकीन है कि अब तुम्हें किसी तरह का आन्देशा न होगा?'

भोली नूर पर रंगीले के शब्दों ने जादू का असर किया। उस का हृदय पिघल उठा। आखें भर आईं। भारत का सम्राट एक साधारण वेश्या के सम्मुख प्रेम-भिक्षा के हेतु गिड़गिड़ाये—आश्चर्य ही तो था। नूरबाई ने मुहम्मदशाह को देखा और उसके नेत्रों से टपटप करके आंसू गिर पड़े। कपटी को अवसर मिला। उसने नूर की स्त्री सुलभ पवित्र भावनाओं और निष्कपटता से अनुचित लाभ उठाया। उसने धीरे से उसकी कोमल हथेली को पकड़ कर सहलाते हुये उसे अपने अंक में खींच लिया। विकसित कमल की पंखुड़ियों में भ्रमर गुंजरित करने लगे।

बेसुध नूरबाई मानो स्वप्न में कह रही हो 'आलीजाह की मुहब्बत पर शक करके मैं बड़ी गुनहगार साबित हुई होती। क़यामत के दिन मेरी रूह जवाब न दे पाती। जहाँपनाह ने जो कुछ दिया है क्या किसी दूसरे को बहिश्त में मयस्सर हो सकेगा?'

मुहम्मदशाह मौन रहा। उसे उत्तर देने की फ़ुर्सत कहाँ थी। कुछ समय तक 'हसीनगाह' में स्तब्धता रही।

'शायद बादशाह सलामत को मैं बहुत पसन्द आई। वैसे......।'

'बहुत ज्यादा नूर। बहुत ही ज्यादा। इतनी बड़ी जिन्दगी में तुम्हारे शबाब और हुस्न की औरत देखने में कम आई थी।'

'लेकिन ये दोनों बेबुनियादी है सरकार।'

'तभी तो इनकी खिंचाव में जादू है। बुनियाद देखने पर ये क्या, सारी दुनियां बेबुनियाद हो जायेगी।'

इसके पहले कि नूरबाई कुछ बोले मुहम्मदशाह की बदबूदार श्वासें उसकी श्वासों से फिर लिपट गई।

: २० :

मस्तानी बड़ी धूमधाम और आवभगत से शनिवार को महल में लाई गई। पेशवा स्वयं उसकी अगवानी के लिए प्रासाद के द्वार पर खड़ा था। उसके आने पर उसे बड़े सम्मान सहित उतारा। मस्तानी फूली नहीं समा रही थी। 'शीशकल' जो शीशे द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर था उसमें मस्तानी ने पेशवा के साथ पदार्पण किया। मस्तानी को बड़ा भला लग रहा था। 'इसे बड़ा सुन्दर बनवाया है आपने?' वह बोली।

'पहले इतना नहीं था लेकिन आज......!'

मस्तानी ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया, 'रहने दीजिये। अभी ज़िंदगी बहुत बड़ी है।'

पेशवा थोड़ी देर में आने के लिये कहकर बाहर चला गया।

नगर में बड़ी हलचल थी। अनायास इस प्रकार की घटना का किसी को स्वप्न में भी अनुमान नहीं था। मुसलमान वेश्या को एक ब्राह्मण पत्नी के

रूप में रखे—महान अनर्थ। पेशवा ने हिन्दू धर्म पर कालिख पोत दी। सत्यानाश कर दिया। म्लेच्छों का द्रोही, म्लेच्छों को देश से बाहर निकालने की बीड़ा उठाने वाला, स्वयं एक म्लेच्छ रमणी को अपनी पत्नी बना ले। राम-राम। इस पाप का प्रायश्चित नहीं हो सकता। इसने तो अपने पूर्वजों की नाक उतार ली। कहीं का न रखा। नगर में बड़ी सरगर्मी थी। परन्तु थी सब कानाफूसी। खुलकर कहने का साहस किसी को नहीं हो रहा था।

संध्या समय पेशवा के विशेष आदेशानुसार गणेश दीवानखाना में दरबार लगा। कक्ष नगर निवासियों से ठसाठस भर गया। जैसे सारा नगर उठ आया हो। इस विशेष दरबार के आयोजन का कारण सबको विदित था। अचानक कोलाहल पूर्ण वातावरण में पेशवा के आने की सूचना दी गई। दीवान खाने में स्तब्धता आई। पेशवा आया। मसनद पर बैठते ही उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और कुछ ऊँचे स्वर में बोला, 'आप सब को असमय बुलाने का एक कारण था। मस्तानी के महल में आने के उपरान्त नागरिकों के बीच धर्म अधर्म के प्रश्न को लेकर जो विरोधात्मक भावनायें उठ खड़ी हुई हैं उनका निराकरण मैं शक्ति द्वारा प्रत्येक के मुंह को न बन्द करके तर्क के द्वारा उचित अनुचित समझा कर आपसी सद्भावनायें स्थापित करना चाहता हूं जिससे भविष्य में इसी लगन से काम करता हुआ मैं शीघ्र-से-शीघ्र यवनों से भारत को मुक्त कर सकूं और सबको सुख सम्पत्ति दे सकूं।'

पेशवा ने इधर-उधर देखकर आगे कहा, 'मस्तानी का चरित्र पवित्र है इसे सब स्वीकार करेंगे। गणपति ने रूप गुण के साथ उसे वीरता भी प्रदान की है। वह साहसपूर्ण कार्यों में कितनी आगे है इसे कहने की आवश्यकता नहीं। रहा प्रश्न अब हिन्दू और मुसलमान का सो घरेलू है। इसे किसी भी रूप में निपटाया जा सकता है। आत्मा में पवित्रता होनी चाहिए। जाति-पांत के भेद को मिटाना है। शुद्धि द्वारा कोई भी मुसलमान हिन्दू बनाया जा सकता है। आप······।'

'यह असम्भव है पेशवा साहब,' पूना का प्रसिद्ध कर्मकांडी ईश्वरदत्त शास्त्री खड़ा होकर चिल्लाया, 'शुद्धि द्वारा जाति परिवर्तन नहीं किया जा सकता। जो जिस जाति का है, जिस धर्म का है उसे उसी जाति धर्म में रहना होगा। फिर म्लेच्छ! इन्हें तो शास्त्रों के अनुसार स्पर्श तक नहीं किया जा सकता। आप शुद्धि की बात लिये फिरते हैं। यह कभी हुआ है या होगा ही?' शास्त्री के शब्दों में कठोरता थी।

पेशवा मुसकराया 'शास्त्री जी, मैं तो मस्तानी को ब्राह्मण बनाने वाला

हूं। मेरा अनुमान है ऐसे कार्यों से देश और धर्म दोनों की उन्नति होगी, अवनति नहीं।'

'यह महान अनर्थ है। कदापि न हो सकेगा। आप अपनी शक्ति के बल पर चाहे जो कर लें परन्तु धर्म उसे कदापि स्वीकार न करेगा। क्या अपनी तलवार द्वारा हमें विधर्मी बनाना चाहते हैं? बना लीजिये, यह कठिन नहीं है किन्तु परिणाम में सत्य ही विजयी होगा। यह पेशवा साहब को नहीं भूलना चाहिये कि सृष्टि के अणु-अणु में परिवर्तनशीलता की अटूट दृढ़ता है।'

'शास्त्री महोदय को,' पेशवा ने उसी प्रकार शान्त भाव से कहाः 'व्यर्थ ही क्रोध आया। मेरे कहने का तात्पर्य कुछ और था। क्या शास्त्री जी मेरे अन्य कार्यों पर कुछ अपना मत प्रकट कर सकेंगे! क्या वे मेरे कार्य सराहनीय नहीं हैं? क्या उन कार्यों से देश, जाति और धर्म को लाभ नहीं पहुँचा है?'

'बहुत अधिक। आपने असम्भव को सम्भव कर दिया है इसमें सन्देह नहीं परन्तु……।'

'रुकिये शास्त्री जी। यदि मस्तानी के साथ रहकर मैं भविष्य में भी इसी प्रकार के कार्य करता रहूं तो क्या आप उसे पसन्द नहीं करेंगे? या वे सम्पूर्ण कार्य के लिये हितकर सिद्ध न होंगे?'

ईश्वरदत्त को उत्तर देने में कुछ विलम्ब हुआ।

पेशवा ने अपनी बात फिर जमाई, 'असत्य को सत्य का रूप देकर धर्म के आदर्शों को न बिगाड़िये' महाराज। आप सरीखे धर्मान्ध पंडितों ने ही छत्रपति शिवाजी को जिस प्रकार तिरस्कृत करके उनके उज्ज्वल कर्तव्य पथ में रोड़े अटकाये थे किसी से छिपा नहीं है। इससे उनके हृदय पर कितनी ठेस पहुँची थी, उसका प्रमाण उनकी असामयिक मृत्यु है। अब दैवयोग से फिर अवसर संभलने का आया है। संभलिये, अन्यथा हाथ मल पछताना होगा।'

बाजीराव के शब्दों ने गणेश दीवान खाना में एकत्रित जनसमूह के मर्म को छू लिया पर शास्त्री अपने स्थान पर दृढ़ था। वह उसी प्रकार चिल्लाया, 'परन्तु श्रीमन्त वैसी स्थिति ही क्यों उत्पन्न होने देते हैं। आप मस्तानी को रखैल के रूप में भी तो रख सकते हैं? उसे शुद्धि द्वारा ब्राह्मण बनाकर व्याहता की भांति रखने का प्रयोजन?'

'मेरे चरित्र पर कालिख पोत कर मुझे नरक का भागी बनाना आपको अधिक प्रिय है परन्तु सद्‌मार्ग पर चलता देखकर आपका धर्म बिगड़ता है ? मैं कामी नहीं और न इन्द्रिय सुख की लिप्सा है। मैं मस्तानी से प्रेम करता हूं। प्रेम ईश्वरीय अंश है। उसकी देन है। इसे धरोहर की भाँति रखना होता है। खैर इस समस्या पर विशेष कर आप, जरा शान्त चित्त से सोचें। आप लोगों से मैं थोड़े में यही कहूंगा कि इस प्रश्न पर मुझे जितना उलझाया जायेगा, महाराष्ट्र की परिस्थितियां उतनी ही बिगड़ेगीं और अन्त में प्रत्येक के लिये जटिल और दुःखदायी सिद्ध होंगी।' पेशवा उठ गया। दरबार भंग हुआ।

रात्रि के भोजन के उपरान्त जब पेशवा चला तो चिमना जी धीरे से बोला 'आप से कुछ कहना चाहता था।'

'कहो।'

'यहां नहीं, ऊपर।'

दोनों ऊपर हाथी दातों द्वारा निर्मित श्वेत कक्ष में आकर बैठ गये।

'तुम मस्तानी के विषय को लेकर कुछ कहना चाहते हो न ?'

'हां।'

'कहो।'

'भाभी के प्रति कुछ मेरा भी कर्तव्य है।' चिमना जी ने भूमिका बांधनी प्रारम्भ की।

'बिलकुल।'

'तो क्या मैं पूंछने का साहस कर सकता हूं कि मस्तानी को इस प्रकार शनिवार बाड़ा में लाकर आपने भाभी के जीवन पर कैसा कुठाराघात किया किया है ? सम्भवतः इस पर आपने सोचा नहीं ?'

'बहुत सोचा है भन्ते ! और हर तरफ से सोचने के उपरान्त जिस निष्कर्ष पर आया था उसका यही परिणाम है। तुम्हें शायद मालूम नहीं, मेरे जीवन को सुखी बनाने में तुम्हारी भाभी ने मुझे कभी भी सहयोग नहीं दिया। सहयोग इसलिये कह रहा हूं कि उनकी प्रकृति को समझने के उपरान्त भी मैंने सदैव यही प्रयत्न किया कि जीवन में एकरसता आवे। हम दोनो मिलकर जीवन को सार्थक बनाने में सफल हों, परन्तु वे सदा अलग-अलग-सी प्रतीत होती रहीं। तुम तो जानते ही हो युद्धप्रिय जनों के जीवन में प्रेम का बड़ा महत्व है।'

'सो तो ठीक है, किन्तु दोषी को दण्डित करके स्वयं भी दोष का भागी

बनना इसे आप उचित समझते हैं? इससे इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ेगा भइया। भाभी की त्रुटियों का दण्ड यह तो नहीं हुआ कि उन्हें त्याग कर किसी परायी रमणी से संबन्ध स्थापित कर लिया। आप······।'

मैंने उन्हें त्यागा नहीं। उनके ऐश्वर्य में न कमी हुई है और न कमी होगी। वह जैसे भी रहना चाहें सुख से रहें। मेरी ओर से उन्हें किसी प्रकार का खटका नहीं होना चाहिये।'

किसी स्त्री के जीते जी उसका पति, उसी के सामने दूसरी रमणी के संग रहे, इससे भी बड़ा कोई और खटका हो सकता है? विशेष कर जब हमारा समाज पति-पत्नी के सम्बन्ध का एक नवीन ही आदर्श रखता है।'

किन्तु अन्ते! मेरी दृष्टि में अब काशीबाई मेरी पत्नी नहीं रहीं। पति-पत्नी का वैवाहिक सम्बन्ध आदर्श पोषक है, इसमें सन्देह नहीं, पर प्रेम शून्य सम्बन्ध को मैं निरर्थक समझता हूं। आदर्श नाम की सार्थकता तभी है जब वह प्रेम से ओत-प्रोत हो। प्रेम रहित संसार की सारी वस्तुयें अग्राह्य हैं।'

'तब तो भाभी और आप के बीच का नाता बिल्कुल समाप्त हो गया?'

'एक प्रकार से यही समझो। अन्तर जो वास्तविक है, उस पर अब मस्तानी ने अधिकार पा लिया है और प्रेम जब अधिकार में बंध कर चलने लगता है तो वह सत्य और ईश्वरीय प्रेरणा से ओत-प्रोत हो जाता है।'

बाजीराव के कहने में हृदय के उद्‌गार थे और चिमना जी सामाजिक नियमों से भयभीत भाभी की ओट में तर्क द्वारा धर्म, समाज और भाभी तीनों की रक्षा करना चाहता था। भला दोनों कैसे एक मार्ग पर आ सकते थे। चिमना जी अपना पलरा हलका पड़ता देख दूसरी ओर मुड़ा, 'भाभी त्याज्य हैं और उन्हें एक प्रकार से आपने त्याग ही दिया। खैर, यह अपनी चीज है। परन्तु संसार में रहकर धर्म और समाज का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा। इनके द्वारा प्रतिपादित नियमों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से परंपरा बिगड़ती है।'

पेशवा मुसकराया, 'तो अब तुम अपनी भाभी से हटकर धर्म और समाज पर आये। ठीक। तुम्हारा अभिप्राय हिन्दू-मुसलमान से है? ईश्वर भी दीवान खाने में यही कह रहे थे। तुम से अधिक न पूंछ कर केवल यह पूंछना चाहता हूं कि यदि तुम्हारा आज का समाज तुम से जानना चाहे कि इस परिस्थिति में भी तुम मेरे साथ धर्म बहिष्कृत हो कर रहना पसन्द करोगे या समाज के साथ, तो तुम्हारा क्या उत्तर होगा?'

'मैं दुनियां से अलग हो कर भी आप से अलग नहीं हो सकता भइया।'

'क्यों ? तुम्हारे धार्मिक और सामाजिक नियमों का उल्लंघन नहीं होगा ?'

'हुआ करे। मैं आपको नहीं छोड़ सकता।'

पेशवा ने चिमना जी की पीठ पर हाथ फेरा 'ठीक ऐसी ही बात मस्तानी के प्रति मेरे हृदय में है अन्ते! मैं उसके लिये देश, धर्म, समाज सभी छोड़ सकता हूं। मेरा जीवन अब उसी के सहारे चलेगा। मेरा अनुमान है उसके बिना मेरा रहना न रहना समान है। मैं तुम्हारी स्थिति को समझता हुआ भी विवश हूं, बाजीराव चुप हो रहा। थोड़ी देर बाद बोला 'जाओ सोओ। समास के पचड़े में न पड़ो। यह मनुष्यों का समुदाय होते हुये भी व्यक्ति विशेष के कर्तव्य पथ में सदैव रोड़ा बन कर उसे ठोकर देने की चेष्टा किया करता है। कर्मठ वही है जो इसे रौंदता हुआ आगे बढ़ता रहे और तब तुम देखोगे कि यही घृणित समाज उसका अनुयायी बनकर उसके कार्यों की सराहना करते हुये भी नहीं अघाता। समझे। कर्तव्य परायण व्यक्ति सारे दोषों से मुक्त हैं। जाओ सोओ।'

चिमना जी को उठना पड़ा।

नगर का हलचल तथा गणेश दीवानखाने का वादाविवाद दासियों द्वारा मस्तानी को सविस्तार विदित हो चुका था और तभी से वह घोर चिंता में पड़ी त्रिपद पर बैठी सोच रही थी। सोचने का तार टूटता ही नहीं था। एक के बाद एक विचार लड़ी की भांति गुंथते चले आ रहे थे। वह रह रहकर इसी निष्कर्ष पर आती कि उसी के कारण तो आज पेशवा को अपने समाज में हीनता का पात्र बनना पड़ रहा है। वह वेश्या पुत्री है। मुसलमान है। म्लेच्छों को पवित्र जनों से प्रेम करने का क्या अधिकार ? उसके प्रेम पर भी समाज का अंकुश है। वह इच्छानुसार सब से प्रेम नहीं कर सकती। वह यही सोच कर ही थी कि पेशवा ने कमरे में प्रवेश किया; किन्तु उसे विदित नहीं हुआ।

पेशवा उसके त्रिपद पर आकर धीरे से बैठ गया। मस्तानी ने देखा और फिर सिर नीचा कर लिया। उसने उसकी ठुढी पकड़ कर उठाया। मस्तानी ने कुछ कहा नहीं। अपलक उसे देखती रही। पेशवा ने पूछा। 'क्या हुआ ?'

उसके उत्तर में वह रो पड़ी।

'हुआ क्या !' बाजीराव को आश्चर्य था। वह उसके आंचल से उसके गीले नेत्रों को पोंछने लगा।

मस्तानी उठने को हुई। उसने उठने नहीं दिया। 'क्या मुझसे……'

वह उसके पैरों पर गिर पड़ी और फफक फफक कर रोने लगी।

'मस्तानी !' पेशवा ने उठाकर उसे पर्यंक पर लिटाया। वह चकित था। कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

मस्तानी बहुत रात गये तक आंसू बहाती रही और पेशवा वहीं बैठा एक टक निहारता रहा। उसने करवट ली और पेशवा की हथेली को लेकर अपने कपोलों के नीचे दबा लिया 'मैं आप से प्रेम नहीं कर सकती।'

बाजीराव अब समझा। वह हंसा 'क्या सौदा नहीं पटा ?' उसने धीरे से उसके गाल पर थपकी दी, 'पगली। यहां सोचते-सोचते दिमाग बौखला उठा और बात क्या कुछ नहीं। सिर्फ इतने के लिये तब से रो रही हो। प्रेम नहीं कर सकती तो न करना।' पेशवा ने उसके अधरों को चूम लिया।

एक ओर पूनम का चाँद किसी को बसा रहा था तो दूसरी ओर किसी को उजाड़ भी रहा था। मस्तानी की मां रेहल से बंधी कुछ पुस्तकें लिये पूना से बाहर जंगल की ओर चली जा रही थी।

: २१ :

दिल्ली स्थित मराठा राजदूत धोधूं गोविन्द ने पेशवा को सूचना भेजी '+ + + + सम्भवतः वजीर कमरुद्दीन खां के सेनापतित्व में मुगलों की एक विशाल सेना मालवा को रौंद कर मराठा शक्ति को सदैव के लिये मिटाने के हेतु शीघ्र ही प्रस्थान करने वाली है। + + + + + आप जैसा समझें प्रबन्ध करें।'

विलासी मुहम्मदशाह को इस प्रकार की बातें सोचने का अवसर मिल जाता है—ऐसी कल्पना बाजीराव ने कभी नहीं की थी। उसे हंसी आई।

उसने सोचा इस बार मुहम्मदशाह से क्यों न भेंट की जाय? तत्काल उसने आदेश दिया और तीसरे दिन अपनी सेना सहित कूच कर दिया। एड़ से एड़ से मिलाये उसकी प्रेयसी भी साथ उड़ती चली जा रही थी। बाजीराव की शक्ति दुगनी हो गई थी।

बढ़ता हुआ पेशवा सुदूर प्रान्तों में नियुक्त सेनापतियों को आदेश भेज रहा था। इस बार उसने बड़ा भयंकर संकल्प कर रखा था। इसी बीच सादत खां की आधीनता में जो सेना दोआब की रक्षार्थ आ रही थी, उसकी मुठभेड़ जमुना के इस पार होलकर के सैनिकों से हो गई। सादत खाँ की बड़ी सेना के सम्मुख होलकर न टिक सका। परिणामस्वरूप मराठे मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुये। कुछ मारे गये और शेष नदी पार करके पेशवा से जा मिले।

सादत खां को अवर्णनीय प्रसन्नता हुई। उसने बादशाह सलामत के पास अपनी जवांमर्दी और दिलेरी के कारनामे सुनहले शब्दों में लिखकर भिजवाये और विश्वास दिलाया कि भविष्य में अब मराठे सिर न उठा सकेंगे, तथा शीघ्र ही बाजीराव बन्दी बनाकर आलीजाह की खिदमत में हाजिर किया जायगा। सम्राट इस बहादुर सिपाहसालार से बड़ा प्रसन्न हुआ और उसके लिये नाना प्रकार के उपहार भेजे। मथुरा के समीप सादत खां के आने पर वजीर कमरुद्दीन, मीरबख्शी, निजाम, मुहम्मद खां बंगश आदि सेनापतियों ने खूब जश्न मनाया। मनाते क्यों नहीं बाजीराव को जो पराजित कर दिया था।

सादत खां द्वारा मुहम्मद शाह को दी हुई झूठी सूचना तथा मुहम्मद शाह द्वारा सादत खां को बधाई और मुगलों का मथुरा के समीप आनन्द उत्सव सारे-समाचार पेशवा को मिले। उसने अपने घोड़े को मोड़ा और सारी सेना मुड़ी। मस्तानी ने एड़ लगाते हुये आश्चर्य से बाजीराव की ओर देखा 'इधर!'

'दिल्ली चल रहे हैं। लाल किला तुमने देखा न होगा?'

'ना।'

'तो चलो। लालकिला देखना और उसके मालिक को भी।'

'पहेली न बुझाइये। बात क्या है?'

पेशवा ने अपना विचार बता दिया।

मस्तानी खिल उठी, 'तब तो तख्त ताउस भी देखने को मिलेगा?'

'देखने को ही क्यों बैठने को भी मिलेगा।'

दोनों प्रसन्न थे। रास तनी। घोड़े दिल्ली के मार्ग पर उड़ने लगे।

इधर सुन्दरियों के हाव-भाव और दावतों से झूम-झूम कर मुगल सादत खां की बहादुरी के पुल बांध रहे थे और उधर पेशवा तुगलकाबाद पहुंच कर धूम मचाने लगा था। जो जैसे था वैसे ही दिल्ली को भागा। बाजीराव का नाम सुन लेना ही किसी व्यक्ति के लिये पर्याप्त था। पेशवा तुग़लकाबाद से कुतुबमीनार आकर रुका और नगर को पूर्णतः रौंद डाला। वह और आगे बढ़ा और दिल्ली के पास दक्षिणी पश्चिमी कोण पर उसका पड़ाव पड़ गया। वह समझता था कि उसका यहां तक आ जाना ही मुहम्मदशाह के लिये सब कुछ था।

दिल्ली में मुसलमानों की जान सूख रही थी तो हिन्दुओं के आनन्द का पारावार नहीं था। मुसलमानों की बेचैनी से शहर खलबला उठा—जो स्वाभाविक था। परन्तु अभी तक जहांपनाह को कोई सूचना नहीं थी। प्रयत्न तो किया गया; परन्तु हरम में सूचना पहुंचे कैसे? नूरबाई के अतिरिक्त जहांपनाह तीसरे को देखना नहीं चाहते थे। खैर किसी तरह अल्लाह-अल्लाह करके रात बीती। तड़के ही से दीवाने आम में लोग इकट्ठे होने लगे और सम्राट के आने के समय तक दीवाने आम के सामने वाला मैदान खचाखच भर गया। सम्राट के आगमन की घोषणा हुई। कोलाहलपूर्ण वातावरण में कुछ नीरवता आई। मुहम्मदशाह इस हंगामें का अर्थ न समझ सका। झुंझला पड़ा 'क्या बदतमीज फैला रखा है। सभी नामाकूल हो गये हैं?'

सिंहासन के समीप खड़े मीरहसन कोका ने प्रार्थना की, 'बाजीराव आ गया है ग़रीबपरवर। मुमकिन है कल उसका हमला हो।'

मुहम्मदशाह ने घूरा, 'तुम्हारा दिमाग तो नहीं फिर गया है मीरहसन? तुम्हें सादत खां की फतेह की खबर नहीं है? बाजीराव को उसने मोची बना दिया है मोची। समझे।'

'आलमपनाह को ग़लत खबर दी गई है हुजूर। बाजीराव की मौजूदगी के सबूत में ये लोग हैं,' उसने सामने इकट्ठी भीड़ की ओर संकेत किया, 'आलीजाह के अलावा अब दूसरा जान माल की हिफाजत नहीं कर सकता।'

'मीरहसन!' मुहम्मदशाह के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी थीं।

'हुजूर एतबार करें। हालत बड़ी नाज़ुक है।'

रंगीला सोचने लगा परन्तु उसे निष्कर्ष पर आते देर न लगी। उसकी त्योरियों पर बल आये, 'कोका,' उसे विश्वास नहीं हो रहा था 'मुमकिन है बाजीराव के धोके में कोई और हो। तुम फौज लेकर हमला करो। मुझे उम्मीद है तुम्हारी जवांमर्दी कारगर साबित होगी।' उसने आदेश दिया।

दस हजार सैनिकों सहित मीरहसन पेशवा को दिल्ली से खदेड़ने के हेतु लाल क़िले से निकला। बड़े-बड़े बह गये बद्दुली कहे कितना पानी—सी दशा हो रही थी मीरहसन कोका साहब की। जिस बाजीराव के नाम को सुनकर बड़े-बड़े सिपहसालारों की रूह फ़ना हो जाया करती थीं उस बाजीराव को खदेड़ने के लिए मीरहसन कोका! दूरदर्शिता की भी हद हो गई।

कोका आया और कें-कें करता भागा। मुगल सैनिक अधिकतर मारे गये। जो बचे उन्होंने प्राण लेकर क़िले में शरण ली। कोका घायल हो गया था होलकर ने वहां का बदला यहां चुकाया। पेशवा अपने शिविर में बैठा सब सुनता रहा—लड़ाई हुई और समाप्त भी हो गई। सम्राट की शक्ति विदित हो गई। लाल क़िले पर अब किसी भी समय अधिकार किया जा सकता था। संध्या हो चली थी। पेशवा ने कल के लिये नगर में प्रवेश करने का निश्चय किया।

मुहम्मदशाह की पराजित सेना आग में तिनका बन गई। दिल्ली निवासियों की दशा कहने योग्य नहीं थी। सम्पूर्ण नगर दुर्ग के परकोटे में बन्द हो जाना चाहता था। प्राण का मोह मिथ्या ही नहीं क्षणभंगुर होने पर भी प्राणी मात्र अपनी किस प्रकार रक्षा करता है—यह अकथनीय है।

संध्या हो गई। झाड़ों के प्रकाश झिलमिलाने लगे। 'हसीनगाह' में बैठा हुआ भारत का सम्राट जीवन-मरण की द्विधा में व्यथित था। पार्श्व में रूप और यौवन का भण्डार लिए नूरबाई थी परन्तु इस समय वह आकर्षणहीन थी। जीवन प्रधान है।

नूरबाई की स्तब्धता खली, 'इन झंझटों से छुटकारा पाने का एक ही रास्ता है सरकार!'

'क्या?' मुहम्मदशाह को सहारा मिला।

'बादशाहत छोड़ कर जंगल में निकल चलिये। वहां मेरे आपके बीच में तीसरा न होगा। फिर ज़िन्दगी ज़िन्दगी की तरह कटेगी।'

रंगीले को कुछ गुस्सा आया पर पी गया। वह दूसरी ओर मुंह करके बोला 'ऐसा भी कहीं हुआ है। इतनी बड़ी हुकूमत छोड़कर जंगलों में दर-दर

की ठोकरें खाता फिरूंगा। हूं'

नूरबाई को सम्भवतः यह ज्ञात नहीं था कि यदि मुहम्मदशाह की हुकूमत बनी रहेगी तो उसकी जैसी कितनी नूर उसके पैर की जूतियां साफ करती फिरेंगी। उसने उसी सादे भाव से फिर कहा 'लेकिन पेशवा को अब रोका भी नहीं जा सकता आलीजाह!' नूरबाई को प्रेम की भूख थी; 'वह आज नहीं तो कल ज़रूर आ जायेगा। तब...........।' वह आगे के शब्दों को कहना नहीं चाहती थी।

'तब क्या। मैं मार.............।'

नूरबाई ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया, 'ऐसी बातें ज़बान से न निकालें।'

'यह तो होना ही है नूर! उस हरामज़ादे सादत खां को क्या कहूं। मुझे ग़लत खबर देकर नमकहराम जशन और दावतें उड़ा रहे हैं! खैर.........।' वह फिर सोचने लगा।

नूरबाई भी किसी चिन्ता में पड़ गई। कुछ समय उपरान्त वह उठी और हसीनगाह के बाहर हो गई। मुहम्मदशाह न जान सका।

* * * * * * * *

अभी रात में सनसनाहट नहीं आई थी; परन्तु नीरवता का साम्राज्य फैल चुका था। विस्तृत पड़ाव के बाहरी भाग के मुख्य द्वार पर एक गाड़ी आकर रुकी। अन्दर से एक युवती उतरी। वह निर्भीकता पूर्वक तैनात सैनिक के समीप जाकर बोली 'मैं पेशवा साहब से मिलना चाहती हूं। क्या मेरी प्रार्थना उन तक भेजने का कष्ट कर सकेंगे? मेरे ऊपर बहुत-बहुत एहसान होगा।'

सैनिक ने उसे ऊपर नीचे देखा। 'आपका आना.................।'

'मैं लाल क़िले से आ रही हूं। पेशवा साहब से कुछ खास बातें करनी हैं।'

'हूं।' उसने गर्दन हिलाई और न समझने वाली भाषा में कुछ चिल्लाकर कहा। पीछे कुछ दूर पर लगी हुई रावटी से एक सैनिक आया। आपस में उन दोनों ने बातें कीं, परन्तु युवती कुछ न समझ सकी। जो आया था लौट गया, 'आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करें।' सैनिक का सम्बोधन युवती को था।

थोड़ी देर उपरान्त सैनिक लौटा और युवती को साथ लेकर चल दिया। पेशवा के शिविर के समीप पहुँच कर सैनिक रुका और संकेत किया। युवती ने अन्दर प्रवेश करते हुए झुक कर तीन बार सलाम किया। बाजीराव ने युवती को देखा फिर मस्तानी को। मस्तानी ने युवती को देखा फिर पेशवा को।

युवती कुछ समझ न सकी। उसकी दृष्टि दोनों पर थी। सुन्दरता होड़ लगाने लगी थी। निर्णय असम्भव था। 'कहो ?' पेशवा ने पूंछा।

नूरबाई मस्तानी के पैरों पर गिर पड़ी और फफक-फफक कर रोने लगी। मस्तानी ने संकेत किया। बाजीराव उठकर दूसरे कक्ष में चला गया। मस्तानी ने उठाकर बग़ल में बिठाया—'क्या बात है ?'

नूरबाई ने हाथ जोड़े 'मैं भीख मांगने आई हूं रानी जी! औरतों की कमज़ोरी को आप समझती ही हैं। अब आप ही............।' वह फिर रोने लगी।

'कुछ कहो भी, बात तो समझ में आवे।'

'बादशाह सलामत की जान बख्शी जावे।'

मस्तानी मुस्कराई, 'समझीं, तुमने मुहम्मदशाह से प्रेम किया है?'

'जी।'

'और मुहम्मदशाह ?'

'वे भी मुझसे प्रेम करते हैं।'

'तुमसे या तुम्हारी जवानी से।'

'नहीं, मुझसे रानी जी।'

'तो तुम्हारे लिये क्या वह अपना साम्राज्य नहीं छोड़ सकते ? यह पूंछा था ?'

नूरबाई ने भी सत्य कहा 'पूंछा था। मेरे लिये वे ऐसा नहीं कर सकते।'

'फिर भी तुम उनसे प्रेम करती हो ?'

'मेरी जगह आप होतीं तो शायद आप भी यही करतीं।'

'लेकिन तुम्हें यह भी तो देखना चाहिये कि तुम्हारी जैसी उनके पास सैकड़ों औरतें हैं। सभी के साथ उनका ऐसा ही दिखावा रहा होगा।'

'सो तो ठीक है। पर मेरा दिखावा तो उन्हीं तक है न।'

मस्तानी ने सोचा परन्तु निष्कर्ष नूरबाई के विपक्ष में निकला, 'मुहम्मद शाह की जीवन रक्षा की जा सकती है, किन्तु दिल्ली का मालिक अब कोई और होगा। असम्भव को सम्भव नहीं किया जा सकता। समझीं।'

नूरबाई की आंखों से आंसू बहने लगे—'रानी जी!' वह मस्तानी के पैरों पर फिर गिर पड़ी। वह सिसक रही थी। मस्तानी ने उठाया। पेशवा ने कक्ष में, प्रवेश किया। नूरबाई खड़ी हो गई।

'तुम्हारा नाम ?'

'नूरबाई ।'

'नूरबाई, तुम्हारी बात हर तरह से पूरी करने की कोशिश की जायेगी। जाओ, तुम्हारी मुहब्बत पर तुमको नाज़ होगा ।'

नूरबाई ने झुक कर सलाम किया और बाहर हो गई ।

मस्तानी ने पैनी दृष्टि से पेशवा को देखा 'यह क्या ?'

'वही जो तुम करना चाहती थीं ।'

'तो अब दिल्ली का स्वामी नहीं बनना है ?'

'बिल्कुल नहीं ।'

'क्यों ?'

'अपने हृदय से पूंछो । जो दशा नूरबाई की थी अगर आज वही दशा तुम्हारी होती और मैं तुमसे छिनता होता, तब ?'

मस्तानी पेशवा की ओर देखती रह गई । बाजीराव ने उसका हाथ पकड़ कर उठा लिया ।

सूर्य निकलने के पूर्व ही मराठी सेना मुड़ चुकी थी । मस्तानी अपने आराध्य देव से नूरबाई के सौन्दर्य का बखान करती चली जा रही थी।

इतिहास में परिवर्तन न हो सका ।

: २२ :

पेशवा बाजीराव ने दिल्ली पर अधिकार नहीं किया, परन्तु जो कुछ भी उसने किया उस युग के लिये असाधारण था । दिल्ली, जिसकी ओर देखने पर देखने वालों की आंखें निकाल ली जाती थीं, वही दिल्ली और उसी दिल्ली का स्वामी अर्थात सम्पूर्ण भारत का सम्राट पेशवा का निहोरा करता हुआ अपने प्राणों की भिक्षा मांगता रहा । यह क्या साधारण घटना थी ? देश के कोने-कोने से पेशवा को बधाइयां आईं। जनता में नव उत्साह का संचार हुआ और अत्याचारी शासकों का आतंक घटा । जनता ने बाजीराव को अपना सिरमौर समझा । सर्वस्व समझा । बादशाहत सिकुड़ने लगी ।

बाहर चारों ओर जब पेशवा की ख्याति और उसके यश के गीत गाये जा रहे थे तो उसके घर पूना में उसके विरुद्ध उसे नीचा दिखाने के हेतु नाना प्रकार की गोटें बिछाई जा रही थीं। गोटों की इस सतरंजी चालों की जननी स्वयं बाजीराव की पत्नी काशीबाई थी। उसका स्त्रीत्व अपने को परखना चाह रहा था। अपने को अजमाना चाह रहा था। काशीबाई अपने पति से बदला लेने को तुल गई थी। वह बाजीराव को उसी भांति पीड़ित करना चाहती थी जिस भांति वह स्वयं तड़प रही थी। उसने मस्तानी के प्रश्न को लेकर उसे तूल देने में गुप्त प्रोत्साहन दिया। धर्म के ठेकेदारों को पेशवा के विरुद्ध उभाड़ने लगी। पेशवा को अधार्मिक सिद्ध करने के लिये कमर कसने लगी।

बाजीराव को पूना पहुँचने में कई मास लग गये। वह सीधा न आकर अपनी प्रेयसी के साथ भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भ्रमण करता, दृश्य दिखाता एवं जीवन और जीवन से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का आनन्द लेता हुआ तथा प्रेम की स्थिरता पर अमरत्व का लेप लगाता हुआ पूना आ पहुँचा। उसके आदेशानुसार शनिवार महल के भीतर पश्चिम की ओर जिस नवीन भवन का निर्माण किया जा रहा था पूरा हो चुका था। यह था 'मस्तानी महल' मस्तानी के रहने के लिये। शनिवार बाड़ा के तीन मुख्य द्वारों में एक द्वार मस्तानी द्वार के नाम से प्रसिद्ध किया गया।

पेशवा ने पूना के पंडितों से फिर याचना की। उन्हें समझाया-बुझाया। वास्तविक तर्क द्वारा अपने पक्ष की पुष्टि की। प्राचीन ऋषि महर्षियों की वाणियों को उद्धृत किया। परन्तु पाखण्डियों और रंगे सियारों के लिये वह सर्वथा अमान्य बना रहा। बाजीराव की चिन्ता व्यथा में परिणित हुई। वह मस्तानी को अपने सामाजिक और धार्मिक रीतियों के अनुसार अर्धांगिनी देखना चाहता था। वह केवल प्रेम करना ही नहीं परन् उसे निभाना भी चाहता था।

सामूहिक रूप से अपने मनोरथ को निष्फल होता देख, उसने अलग-अलग व्यक्तियों से अलग अलग परामर्श करना प्रारम्भ किया। साम, दाम, दण्ड और भेद चारों का उपयोग किया। अन्त में ईश्वरदत्त शास्त्री ने सकार ही तो लिया, 'पेशवा साहब' वह बोला 'यदि मैं हाँ भी कर दूं, तब भी तो कुछ नहीं बन सकता। आपका घर स्वयं आपके विरोध में है।'

'क्या मतलब ?'

'यही···कि······।'

'कहिये कहिये। सत्य कहने में अपराध नहीं।'

'पेशवा साहब की विवाहित पत्नी स्वयं पेशवा साहब के विरुद्ध है।'

'शास्त्री जी!'

'मैं सत्य कह रहा हूं महाराज। आप इस तथ्य का पता लगा लें।'

बाजीराव को काटो तो खून नहीं। औरत यहां तक बढ़ सकती है! वह ईश्वरदत्त को देखता रह गया। नारी समस्या है या रहस्य—पेशवा सोचने लगा। शास्त्री अनुमति लेकर जा चुका था।

भोजन के उपरान्त काशीबाई कमरे में आकर लेटी ही थी कि किसी के पैरों की आहट मिली। उन्होंने सिर उठाकर देखा। बाजीराव ने कक्ष में प्रवेश किया। वह उठकर बैठ गई। पेशवा उसके पार्श्व में जाकर बैठ रहा। वह खिसक कर कुछ हट गई।

'मुझ से घृणा है काशी?'

'मुझे तो नहीं परन्तु आपको शायद है।'

पेशवा खून के घूंट पी रहा था 'मेरे आने से तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा?'

'नहीं आश्चर्य लाने वाले दिन तो कब के समाप्त हो गये।' काशी पहेली में बातें कर रही थी।

पेशवा ने आगे कहा 'मैं तुमसे कुछ पूंछने आया हूं।'

'पूंछिये। किन्तु उत्तर प्रतिकूल न हो यह भय है।'

'तो तुम मेरे प्रश्न का भावार्थ समझती हो?'

'समझती तो नहीं परन्तु मेरा अनुमान सही होगा। आज्ञा कीजिये।' काशीबाई के शब्द-शब्द में व्यंग था।

'काशी, तुम्हारे इन्हीं अवगुणों ने तुम्हारी यह दुर्गति की है फिर भी आंखें नहीं खुलतीं।'

'यहां हैदराबाद और दिल्ली की चढ़ाई नहीं है पेशवा साहब! क्रोध करना बेकार होगा। मेरी दशा में यदि आप होते तो इतना भी साहस करना पहाड़ हो जाता। अपने सुख के लिये दूसरे के जीवन का सत्यानाश ही नहीं वरन् समूल नष्ट करने की योजना बनाना और उस योजना की सफलता के लिये मुझसे सहयोग लेना, यही है न आप का प्रश्न और आपका सिद्धांत? यही है न मस्तानी के प्रति आपके प्रेम की परिभाषा? मेरे लिये लांछना है कि मैं आपको प्रेम न दे सकी। माना कि मैं उसमें असमर्थ रही और आपका पक्ष इसलिये मजबूत है कि आपके पास अपना प्रेम देने का

अवकाश नहीं था। ठीक। यह भी माना पर क्या मैं पूछ सकती हूं कि मस्तानी का प्रेम, जिसकी आप इतनी दुहाई देते हैं, स्वार्थ शून्य है ? मस्तानी द्वारा उत्पन्न पुत्र ही तो आपका उत्तराधिकारी होगा ?' अहंकारिणी अपनी व्यथा को भी तर्क द्वारा सिद्ध करके अपनी दूरदर्शिता का परिचय दे रही थी।

'नहीं, यह मेरा अभिप्राय कभी नहीं रहा है।'

'फिर मस्तानी की शुद्धि के लिये जमीन-आसमान के कुलाबे क्यों मिलाये जा रहे हैं ? क्या प्रेम इसके बिना संतुष्टि नहीं पा रहा है ?'

'मैं समझा, तुम्हारे विरोध का ध्येय भी तुम्हारे निज का स्वार्थ है, धर्म की कट्टरता नहीं। मैंने प्रायः पिता जी को कहते सुना था कि जब शिक्षित स्त्रियां अपनी विद्वता के बोझ को ढोने में असमर्थ होने लगती हैं तो उनसे देश और समाज को जो क्षति होती है सो तो होती ही है, वे स्वयं भी अपना सर्वनाश कर लेती हैं—आज प्रत्यक्ष भी देख लिया। खैर, जैसा तुम उचित समझो करो।' पेशवा उठ पड़ा 'मैं जा रहा हूं।'

काशी बाई ने कोई उत्तर नहीं दिया।

पेशवा चला गया, काशी बाई बड़ी रात गये तक सोचती रही।

यद्यपि प्रत्येक दिशा से निराश होने पर भी पेशवा अपने कर्तव्य में संलग्न रहा परन्तु उसकी बढ़ती हुई आन्तरिक पीड़ा दिन-प्रतिदिन अज्ञात रूप से उसे हतोत्साहित करती गई। उसका चित्त स्थिर रूप से किसी कार्य में तत्पर नहीं हो पा रहा था। अन्तर की पीड़ा संघातक होती जा रही थी। मस्तानी ने उसे बार-बार समझाया, अपनी ओर से हर प्रकार का सन्तोष दिया; पर बाजीराव के हृदय को न शान्ति थी और न सन्तोष। वह बहुधा मस्तानी से बातें करता करता कह उठता 'प्रेम का निर्वाह होना अनिवार्य है प्रिये, मैं कपटी कहलाकर अपना-तुम्हारा उपहास नहीं करा सकता।'

मस्तानी उत्तर देती 'तो अब आप लोक-लाज की चिन्ता करने लगे हैं ?'

'लोक - लाज की चिन्ता नहीं, प्रेम को आदर्श में परिवर्तन करने की चिन्ता।'

'अपने लिये या दूसरों के लिये।'

'अपने और दूसरे दोनों के लिये, तभी इहलोक और परलोक दोनों बनेंगे। जीवन के अन्तिम दिनों तक आप सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव करती रहें, यही इसकी समाप्ति है।'

'अभी-अभी आरम्भ हुआ है और अभी से अन्त की चिन्ता—यह भी

खूब रहा, इतनी शीघ्रता !' मस्तानी हँस पड़ी 'आप भी कहाँ इहलोक और परलोक के पचड़े में उलझ गये। यह सब साधु सन्यासियों के जिम्मे है। हमारे आपके बूते का रोग नहीं।' मस्तानी सत्य को हवा में उड़ा देना चाहती थी।

'इहलोक और परलोक के सृजन में उस सर्वज्ञ का विशेष अभिप्राय है मस्तानी ! भविष्य जो अन्धकार में है उसे प्रकाश में लाने का एक मात्र यही मार्ग है। मैं......'

मस्तानी बीच में बोल पड़ी 'समझीं ! आप मुझे अकेले छोड़ कर नहीं जा सकते। मैं सदैव छाया की भांति आपके साथ साथ रहूंगी। आपके चाहने पर भी मैं अलग नहीं हो सकती, इसे आप ध्रुव सत्य मानें।'

पेशवा कुछ और कहने को हुआ। मस्तानी ने रोका 'छोड़िये इन बातों को, आपके मस्तिष्क में पता नहीं कहाँ-कहाँ का बवंडर उठा करता है। आज मैं आपको नया गीत सुनाऊँ ?'

वह तान पूरा लेकर सामने बैठ गई और गाने लगी—

मैं प्रीतम की चेरी।
पलकन मांहि बिठाय सेजरिया द्वार कपाट है फेरी ॥
समझत नाहि थकी समुझावत मानत एक न मेरी।
सांचि कहूं मैं पीरे तो सों तू मेरा मैं तेरी ॥

: २३ :

नूरबाई को बाजीराव के कहने का विश्वास तो था फिर भी हृदय शंकाओं के पलड़े में रात भर नीचे ऊपर होता रहा, नींद नहीं आई। विहान होने पर जब पेशवा के लौट जाने की सूचना मिली तो उसके आनन्द का ठिकाना न रहा। पर वह आनन्द क्षणिक था। जैसे आंधी आकर निकल गई और उसके निकलने के उपरान्त वातावरण में जो स्तब्धता आती है, ठीक वही दशा नूरबाई की हो गई। एकबारगी उसके मस्तिष्क में बाजीराव और मुहम्मदशाह का तुलनात्मक चित्र खिंच आया और ज्यों-ज्यों उसके विचारों

कीं लड़ियाँ गुंथती गईं, त्यों-त्यों हृदय का शूल बढ़ता गया। पिछले संध्या की मुहम्मदशाह की स्वार्थ पूर्ण बातें एक-एक करके स्मरण आने लगी। जीवन का रूप बदलने लगा, सत्य असत्य के परखने की जिज्ञासा बढ़ी। वह उठ बैठी।

प्रत्येक दिनों की भांति कल की रात मुहम्मदशाह के लिये शराबी दौर की नहीं थी। अतः आज उसकी सबेरे ही नींद टूट गई। जान बड़ी प्यारी होती है। आख खुलते ही उसने डरी हुई नज़रों से अपने चारों ओर देखा। उसे भय था कि कहीं वह बंदी न बना लिया गया हो। पास खड़ी हुई नूरबाई ने शुभ सन्देश सुनाया, 'बाजीराव लौट गये जहाँपनाह।'

'लौट गया!' वह उठ बैठा 'क्यों लौट गया नूरबाई?'

'क्या कहा जा सकता है? यह उनकी तबियत थी।'

'मुझे यक़ीन नहीं हो रहा है नूर!'

'इसलिये कि उनकी दहशत से आपका दिल मुर्दा हो गया था।' मुहम्मदशाह को अब उसके कथन पर विश्वास हो गया। संकट टला देखकर उसने अब रोब की ली 'दहशत भगोड़े को होती है या मैदाने जंग के डटे रहने वालों को? मुगलिया सल्तनत के इक़बाल के जानते हुये भी तुम्हें यह कहने का साहस हो रहा है? देखती नहीं दुश्मन फ़तेह पाकर भी जाने के लिये मजबूर होता है। इस्लाम की बुलन्दी के खिलाफ अभी उंगली उठाने वाला कोई पैदा नहीं हुआ।' चाँद सदृश्य मुखड़े पर उसकी दृष्टि पड़ी। आज वह उसके लिये कालिमा रहित हो रहा था। उसने हाथ पकड़ कर नूरबाई को अपनी गोद में खींच लिया।

नूरबाई को अच्छा नहीं लगा।

'मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह सब सिर्फ तुम्हारी मुहब्बत की कोशिश है।'

नूरबाई ने कोई उत्तर नहीं दिया। मुहम्मदशाह स्वयं अपने कथन पर कहाँ तक विश्वास करता है इस खोखलेपन का अनुमान उसके भावों से वह लगा रही थी। मुहम्मदशाह ने पुचकारा 'मेरी जिन्दगी में बहुत सी औरतें आई हैं नूर, लेकिन जो कुछ मैं तुमको दे सका हूं वह न तो किसी को हासिल हुआ है और न किसी को कभी होगा।'

'यह मेरी खुशकिस्मती है हुजूर जो इतनी प्यारी तो बन सकी।'

'खुशकिस्मत मैं भी हूं जो तुम्हारी मुहब्बत को पा लिया है। इंसान को

एक औरत की मुहब्बत पा लेना मतलब जिंदगी के मक्सद को समझ लेना है। यह मामूली चीज नहीं।'

'यह गरीबपरवर का बड़प्पन है। सरकार सभी कुछ कह सकते हैं लेकिन मेरा ख्याल है कि दुनियां में कुछ ऐसी और भी चीज़ें हैं जो मुहब्बत से ज्यादा प्यारी और कीमती समझी जाती हैं।' नूरबाई के पूंछने में गूढ़ता थी।

'क्यों नहीं, लेकिन वे इसलिये ज्यादा प्यारी हैं कि कुदरत खुद ने उसको ऐसा बनाया है। उसमें उस परवरदीगार का अपना फिलसफा है।' धूर्त मुहम्मदशाह को नूरबाई क्या सीख दे सकती थी।

'आलीजाह, सही फर्माते हैं पर वे भी तो फ़ानी हैं सरकार।'

'क़यामत के रोज तो कुदरत भी फ़ना हो जाती है नूर! फिर इसके लिये क्या कहा जाय। अल्लाह ताला ने जो कुछ बनाया है सभी मिटने वाले हैं। खुद वह नहीं मिटता। इसी से वह सब का बनाने वाला हुआ।'

'तब तो फ़र्ज़ यह कहता है कि हर एक को उसी से मुहब्बत करना चाहिये, दूसरी बातें झूठी हैं।'

'जाहिर है, लेकिन ऐसा होता तो नहीं या यों कहो वह होने ही नहीं देता। इससे उसके कामों में अड़ंगे आते हैं।'

नूरबाई ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह विचारों के टेढ़े-मेढ़े रास्तों पर भटकने लगी परन्तु उसे अपनी मंजिल तक पहुँचना ही था। वह पहुंची, पहुंचने वाले को कौन रोक सकता है? उसका अन्तर एक नवीन प्रकाश की ज्योति से जगमगा उठा। मुहम्मदशाह अपनी वासना की तृप्ति में संलग्न था। हुआ करे, नूरबाई के लिये अब वह अस्तित्वहीन हो रहा था। उसमें उसको कोई चाव नहीं था।

: २४ :

शाही सेना के लौटने पर मुहम्मदशाह ने वज़ीर कमरुद्दीन तथा अन्य सिपहसालारों की जो थुक्का फ़ज़ीहत की सो तो की, लेकिन सादत खाँ को तो सूली पर ही चढ़ा देना चाहता था। खैर बहुत, कुछ आरज़ू मिन्नत और असीर

उमराओं के कहने सुनने पर बादशाह का दिमाग़ ठण्ढा हुआ। सादतखाँ बख्श दिया गया। खान खून की घूंट पीकर रह गया। उसकी बड़ी भद हुई। जो कुछ नहीं होना चाहिए था वह सब हो गया।

निज़ामुलमुल्क और सादत खाँ की फिर बैठकें होने लगीं। नादिरशाह से जो पत्र-व्यवहार चल रहा था उसमें अब अधिक तत्परता बरती जाने लगी। नादिरशाह तो घात में था ही वह क्यों न अवसर से लाभ उठाता। उसके लिए जैसे मुहम्मदशाह वैसे ही बाजीराव। उसके लिए दोनों शिकार थे। अन्तर यदि थोड़ा था तो मुसलमान और हिन्दू का। पर यह उसके लिए अभी दूर की बात थी। इसका निर्णय वह हिन्दुस्तान आने पर करेगा। अभी केवल निज़ाम और सादतखाँ के कथनानुसार अपना कार्यक्रम बनाना था।

इधर से निर्णय का सन्देश पहुँचते ही नादिरशाह अपनी विशाल सेना सहित काबुल, पेशावर और अटक पर विजय पताका फहराता लाहौर आ धमका।

इधर पेशवा को धोंदू गोविन्द द्वारा बहुत पहले ही विदित हो चुका था कि सादत खाँ और निज़ामुल-मुल्क, नादिरशाह को आमन्त्रित करके महाराष्ट्र को धूल धूसरित करना चाहते हैं। न रहे बांस न बजे बाँसुरी—यह है उनका संकल्प। अत: बाजीराव ने भी गुप्त रूप से प्रत्येक तैयारी कर रखी थी। अब अवसर आया था उसे अपनी युद्ध चातुरी और पराक्रम दिखाने का। दोनों भाइयों के बीच सलाह हुई जिसका सारांश था इस पार या उस पार।

लाहौर का सूबेदार ज़करियां खाँ ने बफादारी बरती। वह ससैन्य नादिरशाह के मुक़ाबिले में आ डटा परन्तु उसका आना न आना नादिरशाह के लिये क्या महत्व रखता था? लाहौर पर आक्रमणकारी का आधिपत्य स्थापित हो गया। यह कहानी १२ जनवरी सन् १७३६ की है और १८ जनवरी १७३६ को मुहम्मदशाह रंगीला अपने वज़ीर, मीरबख्शी, सिपहसालारों, सरदारों तथा निज़ामुल-मुल्क और सादत खाँ के सहित सेना का नेतृत्व करता हुआ राजधानी से प्रस्थान किया। कर्नाल पहुँच कर पड़ाव पड़ गया। सेना की व्यूह रचना की गई। नादिरशाह की प्रतीक्षा होने लगी। वह कूंच करता हुआ सरहिन्द पर रुक गया। मुग़लों ने कर्नाल से बढ़ कर नादिरशाह पर आक्रमण किया परन्तु वह आक्रमण करना न करना एक जैसा था। इधर फूट थी उधर एकता। इसी फूट से भारत के पृथ्वीराज जैसे शक्तिशाली और योग्य शासक को भी महमूद गोरी से पराजित होना पड़ा था। नादिरशाह के सैनिकों ने बड़ी निर्दयता से मुग़लों का बध किया। मीर बख्शी खान दौरान बुरी तरह

घायल हुआ और उसकी मृत्यु हो गई। पूर्व निश्चित योजना के अनुसार अवसर देखकर रंगा स्यार सादत खां बन्दी होकर नादिरशाह से जा मिला। संध्या हो चली थी। युद्ध बन्द हुआ।

कर्नाल से मराठा दूत बाबूराव मल्हार ने लाहौर की पराजय तथा नादिरशाह की सैनिक शक्ति और उसके विचार पेशवा को सूचित किया। पेशवा ने अनुमान लगाया—दिल्ली गई और मराठों से युद्ध अब अवश्यम्भावी है। उसने उत्तर भारत में स्थान-स्थान पर लगे अपने विशेष कार्यवाहकों को अधिक सतर्क रहने की तत्काल आज्ञा दी। जतसिंह और बुन्देले सरदारों को किसी भी समय सहायतार्थ तैयार रहने के लिए कहा। अपनी ओर से वह पूर्ण तैयार था। इस प्रकार अपने को सुदृढ़ बनाकर नदिरशाह से मोर्चा लेने के लिए वह अवसर ढूंढ़ने लगा।

* * * * * * * *

जगमगाते प्रकाश में सादत खां और नादिरशाह की वार्ता प्रारम्भ हुई। सादत खां ने फार्सी में पूंछा, 'अब शाह का क्या इरादा है ?'

'कैसा इरादा ?' नादिरशाह जैसा देखने में डरावना था वैसी ही उसकी आवाज़ भी थी।

'इस लड़ाई के मुताल्लिक। अब कल कोई मुठभेड़ हो ऐसी तो कोई उम्मीद नहीं। मुहम्मदशाह के लिए इतना ही बहुत है। जहां तक मेरा अन्दाज़ है कल सुलह की बातचीत होगी।'

'सुलह की बातचीत ! कैसी सुलह ? मैं इतनी दूर से सुलह करने आया हूं ?' वह रुका 'हां एक शर्त पर सुलह हो सकती है। मुहम्मदशाह दिल्ली छोड़ दे।'

'बिल्कुल ! बिल्कुल !! हुजूर बिल्कुल सही फर्माते हैं। मुहम्मदशाह की बदइन्तज़ामी ही ने इतनी बड़ी सल्तनत को चौपट कर दिया है नहीं तो क्या मराठे इस तरह सीना तानकर मुक़ाबिले में आ सकते थे ? इस्लाम की इतनी तौहीन ! हद हो गई है सरकार !'

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। कुछ समय उपरांत नादिरशाह बोला 'लेकिन सादत खां साहब, दिल्ली लेकर मैं करूंगा क्या ? मुझे तो यहाँ रहना नहीं है। अब सब कुछ आप ही लोगों को देखना है।'

'जी हां सही फरमाते हैं।'

नादिरशाह सोचने लगा।

'हुजूर को किसी बात का अन्देशा है!'

'नहीं, अन्देशा क्या होगा। मैं सोचता था.......... वैसे आपको कुछ अन्दाज़ है कि अगर मुहम्मदशाह से रक़म ऐंठी जाय तो कहां तक वसूल हो सकती है?'

सादत खां का माथा ठनका, 'लेकिन हुजूर...........।'

'आप खां साहब', नादिरशाह ने बीच में काटा 'समझते नहीं, मैं सोचता हूं कि मुहम्मदशाह से दौलत पर सुलह कर लूं और जब दौलत वसूल हो जाय तो उसे निकाल बाहर करूं और आप लोगों के हाथों में सल्तनत की बागडोर देकर लौट जाऊँ। क्या ख्याल है आपका?'

सादतखां ने उसे ध्यान से देखा परन्तु उसके चेहरे पर कुछ भी नहीं मिला। नादिरशाह के इस प्रस्ताव से वह सहमत तो नहीं था पर विवशता थी। उसे हां करना ही पड़ा।

'तो आपका अन्दाजा कितना है?' नादिर ने पूंछा।

'यही कोई बीस करोड़ रुपये।'

'बीस करोड़!' लुटेरे की आंखें फैल गईं।

'बीस करोड़ से ज्यादा ही समझिये कम नहीं।'

नादिरशाह को स्वप्न सा दिख रहा था। 'ठीक है। कल इसी पैमाने पर बातचीत होगी। आपने तो मेरी आँखें खोल दीं।'

वार्ता समाप्त हुई। सादत खां को शिविर में पहुंचाया गया जो नदिरशाह के शिविर कुछ दूर पर था। रात भर उसे नीद नहीं आई। मन बड़ा उद्विग्न था। सोचता था कुछ और अर्थ निकलता था कुछ और। निष्कर्ष पर पहुंचना दूभर हो रहा था। नादिरशाह की बातें और उसके भीतर छिपा हुआ रहस्य उसके मस्तिष्क से परे की समस्या हो रही थी। भोर होने पर उसकी आंख लगी। वह सो गया। दिन चढ़ने पर नींद टूटी तो वह सरदार सादतखां नहीं वरन बन्दी सादत खां था। जीवन की समस्त लालसाओं पर पानी फिर गया।

दूसरे दिन मुहम्मदशाह की ओर से निजाम संधि की वार्ता लेकर आया। वह जो चाहता था वही हुआ। नादिरशाह से उसकी भेंट हुई। शाह ने बैठते हुये पूंछा 'मैं नहीं समझ पाता कि जिस बादशाह के पास आप जैसे बहादुर और दूरंदेश सलाहकार हों उस बादशाहत में मराठों की

इतनी ताकत बढ़ जाय ? बड़े ताज्जुब की बात है। वे तो कभी के नेस्तनाबूद किए जा सकते थे।'

'लेकिन मेरी बात सुनी जाय तब तो। वहां तो हिजड़ों और तवायफों का बोलबाला है। बादशाह सलामत उन्हीं के मुताबिक चलते हैं। यही वजह है कि मैंने जुनूब का हिस्सा अपने लिये चुना है।'

'सही है,' उसने गर्दन टेढ़ी की 'मजबूरी सभी कुछ करा देती है। खैर अब आप मुझसे क्या चाहते हैं। मेरी राय में यह झगड़ा ही हमेशा के लिये साफ कर दिया जाय। हिन्दुस्तान से मराठी कौम की बुनियाद मिटा देना ही बेहतर होगा। बार बार की परेशानी छूटे। क्या ख्याल है आप का ?'

'आप बजा फर्माते हैं। ऐसा हो सके तो क्या कहना है।'

नादिरशाह मुसकराया 'ऐसी कौन सी चीज है जो न हो सके। मेरे लिये आज तक कोई काम नामुमकिन भी हुआ है। मराठों का वही......वही पेशवा बाजीराव, वही तो सब कुछ है ?'

'जी। वही उसका सरगना है।'

'लेकिन सुना है अभी छोकरा सा है। लड़ेगा क्या ?'

'शाह को............ ।'

'खैर, खैर। अभी इसके लिये वक्त है। दिल्ली पहुंच कर गौर किया जायेगा।' उसने जम्हाई ली 'आप के बादशाह सलामत किन शर्तों पर सुलह करना चाहते हैं ?' इतनी भूमिका के उपरान्त वह अपने मतलब पर आया।

'आप किन शर्तों पर पसन्द करेंगे ?'

नादिरशाह ने निजाम को भेद भरी दृष्टि से देखा। उसे भांपते देर न लगी कि चावल पुराना है। वहां अधिक सतर्कता की आवश्यकता है। वह बोला 'मेरी शर्त क्या आप से छिपी है लेकिन इतना ख्याल रखना होगा कि दिल्ली पहुंच कर ही कोई काम किया जाय। अभी से मुहम्मदशाह के दिल में शक पैदा करना ठीक न होगा ?'

'जैसा आप मुनासिब समझें।'

'तो बरवक्त तावान लेकर सुलह कर लेना मुनासिब मालूम होता है ? मुहम्मदशाह कितना तावान अदा कर सकेंगे ?'

निजाम सब कुछ समझ गया। उसने नादिरशाह से दुनियां अधिक देखी थी। लुटेरे को अपना देश अधिक प्रिय है। निजाम उसे चरका देने का

प्रयत्न करने लगा क्योंकि मुहम्मदशाह नादिरशाह से ज्यादा नजदीक था। वह बोला 'मैं आपको ठीक ठीक तो नहीं बता सकता, पर जहां तक मैं समझता हूं सरकारी खजाने में कुछ होगा हवागा नहीं। आये दिन मराठों की लड़ाइयों से सल्तनत तो आलमगीर के जमाने में ही खोखली हो चली थी जो कुछ बचा वह 'रंगीला' बनने के शौक ने लीप पोत बराबर कर दिया। खैर इतना जरूर है कि अगर आपने सख्ती बरती तो पचास लाख खींच खांच कर वसूल किया जा सकता है। उससे ज्यादा की गुंजायश मैं नहीं समझता।'

'क्या? सिर्फ पचास लाख उसने निजाम को घूरा।'

'इसके लिये भी काफी परेशानी उठानी पड़ेगी।'

'चलिये इतना ही सही। जो मिल जाय वही क्या कम है। पेशवा से अच्छी रकम वसूल हो सकेगी?' नादिर बड़ा छठा हुआ था।

'बिल्कुल। उसने हिन्दुस्तान की लूट से सतारा को भर डाला है।'

नादिरशाह ने अन्दर ही अन्दर हंस कर आसफजाह को बिदा दी।

संध्या को नादिरशाह की ओर से मुहम्मदशाह और उसके सामन्त सरदारों को भोजन का निमंत्रण था। बादशाह सलामत आये। आतिथ्य सत्कार जैसा होना चाहिये वैसा हुआ। तदुपरान्त भोजन की तैयारी होने लगी। लोग खाने पर बैठे। दोनों शाह सब से अलग एक ओर थे। मुहम्मदशाह ने कौर निगलते हुये जिक्र किया 'रुपयों की अदायगी कल शाम तक हो जायगी। आप……… ।'

'कोई जल्दी नहीं। मैं ने………'

'क्यों? आपको जल्दी लौटना भी तो होगा।'

'हां, लौटना तो था मगर अब सोचता हूं कि जब इतनी दूर चलकर यहां तक आ पहुंचा तो क्यों न दिल्ली को भी देखता चलूं। सुना है दुनियां में अगर कहीं बहिश्त है तो वहीं है। मेरे चलने से आपको कुछ परेशानी तो जरूर होगी। मगर………… ।'

'नहीं नहीं,' मुहम्मदशाह ने बीच में टोका किन्तु उसका चेहरा एकबारगी फक पड़ गया, 'उसे भी अपना ही घर समझें। शाह के चलने से मुझे अजहद खुशी होगी। सिर्फ फिक्र यह थी कि खातिरदारी में………क्या शाह दुबारा तकलीफ गवारा नहीं कर सकेंगे ताकि मैं दिल खोल कर मेहमान नेवाजी का फर्ज अदा कर सकूं।' उसके मस्तक पर पसीने के कण दृष्टि गोचर होने लगे थे।

'आप भी क्या बात करते हैं बादशाह सलामत। मेरे और आप में अब फर्क ही क्या? दुबारा आना गैर मुमकिन-सा है। कल यहां से कूच कर देने का इरादा है।'

मुहम्मदशाह के बला टालने से भला बला कब टल सकती थी? वह मौन हो गया।

: २५ :

लाल किले के दीवाने आम से दिल्ली के नागरिकों ने नादिरशाह के दर्शन किये। जिन्दाबाद के नारे लगाये गये और शुभकामनायें अर्पित की गईं। नादिर प्रसन्न था। संध्या को दीवाने खास में नृत्य का आयोजन था। रंगीला नादिर को अब भी बुद्धू समझ रहा था। सांध्य प्रदीप जल जाने पर दोनों शाह मयूर सिंहासन पर आसीन हुये। नृत्य आरम्भ हुआ। सुन्दरियों की सुरीली तान और कटाक्ष हृदय को बेधने लगे, परन्तु लुटेरे की दृष्टि तो तख्त ताऊस में उलझ गई थी। बहुमूल्य हीरे जवाहरात जिन्हें शाहजहां ने न मालूम कहां कहां से मंगवा कर उसमें जड़वाया था, उसकी आँखों को चकाचौंध कर रहे थे। मणि माणिक्य के सम्मुख सुन्दरियों के हाव-भाव उसके लिये कोई महत्व नहीं रखते थे। उसने उन पत्थरों को टटोल टटोल कर कीमत आंकने का झूठा प्रयास करना आरम्भ किया। उसे आश्चर्य था कि संसार में ऐसी भी वस्तुयें हैं जिनका स्वप्न में भी कोई अनुमान नहीं कर सकता? अचानक उसकी दृष्टि नीचे से ऊपर को गई। सामने संगमरमर निर्मित दीवार पर सुन्दर अक्षरों में लिखा था, 'अगर फिरदौस बरूये ज़मींअस्त, हमीअस्त व हमींअस्त, व हमी अस्त',* उसके मन ने सत्यता की पुष्टि की। उसकी निगाह फिर तख्त ताऊस पर मंडराने लगी। नृत्य का कार्यक्रम चल रहा था। बीच बीच में मुहम्मदशाह उसे देख लेता और उसके हृदय की बढ़ती पीड़ा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती थी।

---

*पृथ्वी पर यदि कहीं स्वर्ग है तो यहीं है और यहीं है।

अन्त में मुहम्मदशाह से न रहा गया। वह मयूर सिंहासन को नादिर की दृष्टि से हटाना चाहता थ। यद्यपि ऐसा करने से कोई लाभ नहीं था फिर भी उसके उद्विग्न चित्त को कुछ शान्ति तो मिलती ही। वह बोला 'शायद शाह को नाच पसन्द नहीं आये ?'

'कुछ खास नहीं।' उसने सामने नाचती नर्तकी को देखा।

बादशाह ने हाथ का संकेत किया। नाचने वाली रुक गई। तख्त-ताऊस के नीचे बैठा कमरुद्दीन उठ खड़ा हुआ। 'नूरबाई वजीर-ए-आजम।'

'जी गरीब परिवर।' कमरुद्दीन ने हटकर किसी को संकेत किया।

नूरबाई की नकाब महफिल में उठी। नादिरशाह से आँखें मिलीं। वह कांप उठी। बिल्कुल दैत्य जैसा था। नादिर नूरबाई को देखता रहा। उसने संकेत द्वारा बुलाया। नूरबाई के प्राण सूख गए। आज प्रथम बार उसे अपने जीवन से घृणा हुई थी। वह कांपती हुई सामने आकर खड़ी हो गई। उसका सिर झुका हुआ था। नादिरशाह ने और समीप आने के लिये कहा। नूर झिझक रही थी। मुहम्मदशाह रूखे शब्दों में बोला 'और नजदीक आओ, बिल्कुल पास।' नारी की उत्पत्ति में क्या सृष्टि निर्माता का भी कोई घृणापूर्ण अभिप्राय रहा है ? सोचने वाला विषय है।

नूरबाई को मयूर सिंहासन से सटकर खड़ा होना पड़ा। नादिरशाह ने उसकी ठोढ़ी पकड़ कर ऊपर उठाया। 'वाह हुस्न क्या दी है तुम्हें अल्लाह ने। मैं बहुत खुश हुआ।' उसने ठोढ़ी छोड़ दी। नूरबाई पसीने से सराबोर हो रही थी।

'अभी गाना और नाच देखकर शाह और खुश होंगे। कुदरत के पर्दे पर ऐसी नायाब चीज कम देखने को मिली है।' मुहम्मदशाह ने नूरबाई को देखा, 'सुनाओ कोई फार्सी की गजल।'

सारंगी वाले ने तान भरी, नूरबाई के घुंघरू छनछनाये। तबलिया ने टुकड़ा लगा कर सम पर थाप मारी नूरबाई गाती हुई नाचने लगी। वातावरण में नवीनता आ गई। नादिरशाह वास्तव में झूमने लगा। मुहम्मदशाह को कुछ सान्त्वना मिली। आशा जागी—सम्भव है उसका साम्राज्य और मयूर सिंहासन अब बच जाय। गीत समाप्त हुआ, लुटेरे ने मुहम्मदशाह से बड़ी प्रशंसा की।

'अब कोई कन्हैया का गीत सुनाओ नूर।' बादशाह ने कन्हैया का इतिहास नादिरशाह को बतलाया। साथही उसने यह भी जाहिर किया कि अब जो नूरबाई गीत गायेगी उसके भाव में स्वयं तो वह गोपिका बनेगी और उसे

(नादिरशाह) कन्हैया बनायेगी। नादिरशाह का मुखमण्डल खिल उठा। वह सुनने के लिए अधिक सतर्क हुआ। नूरबाई ने गाना प्रारम्भ किया।

कन्हैया तोरे बिन कुछ न सुहाय।

अब तो सों प्रीति लगी अनजाने सुध बुध गयो हिराय ॥

नूरबाई गाती जा रही थी और मुहम्मदशाह नादिरशाह को शब्दों का अर्थ समझाता जा रहा था। उधर नूरबाई भी अपनी सुधबुध खोकर स्वयं को साकार बना रही थी। तबलिया और सारंगी वाले पसीने से भीग चुके थे। परन्तु नूर का भजन समाप्त होने को होता ही न था। वह सचमुच गोपी बन कर कन्हैया की धुन में भाव विभोर हो उठी थी। लगभग पौन घंटे के उपरांत जब वह नाचते-नाचते गिरी तब गीत समाप्त हुआ। उसके नेत्रों से आंसू झर रहे थे, और वह सिसक रही थी।

नादिरशाह गद्गद् हो उठा। 'बादशाह सलामत बुरा न माने तो कुछ अर्ज करूं।' वह बोला।

'आप मुझे शर्मिन्दा कर रहे हैं। आपके हुक्म पर मुगलिया सल्तनत कुर्बान की जा सकती है शाह। हुक्म कीजिये।' रंगीला समझ रहा था।

'आपने···क्या नाम बतलाया?'

'नूरबाई।'

'हां नूरबाई। क्या वह आप······।'

'वह आपकी है। इसे कहने की जरूरत नहीं।'

'मैं आपका किस मुंह से शुक्रिया अदा करूं शाहंशाह।' मुहम्मदशाह मुसकराता रहा।

नृत्य का कार्यक्रम समाप्त हुआ। भोजन के उपरान्त दोनों अलग हुये। मुहम्मदशाह लेटा तो उसका मन शान्त और प्रसन्न था परन्तु लुटेरा रात की नीरवता में घंटों सोचता रहा। अन्त में उसे अपने वजीर को बुलवाना पड़ा। वह आया, दोनों के बीच कुछ मन्त्रणाएं हुईं। बात तय हो गई। उसे जाने का आदेश मिला। तब नादिरशाह को नींद आई।

: २६ :

दो सौ वर्ष तक भारत के पश्चिमी तट पर, गोआ से लेकर डामन तक लगभग चार सौ मील फैले हुये प्रदेश पर पुर्तगालियों का अधिपत्य उसी प्रकार रहा जिस प्रकार किसी विदेशी तानाशाह का हुआ करता है। यद्यपि आगमन के प्रारम्भ काल में उनकी वैसी ही नीति थी जैसी अंग्रेजों की परन्तु ज्यों-ज्यों उनकी शक्ति बढ़ती गई कार्य संचालन में वैसे ही परिवर्तन आता गया। विचार बढ़े। सत्ता की स्थापना हुई और वह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती रही। सत्ता के मद ने पुर्तगालियों की निरंकुशता को बलवती बनाया जैसे औरंगजेब का बन गया था। तलवार के बल पर ईसाइयों ने हिन्दू संस्कृति और सभ्यता को मिटाना चाहा। देवालय गिराये जाने लगे और उनकी जगह गिरजाघरों की नींव पड़ने लगी। बलपूर्वक हिन्दुओं को ईसाई धर्म में परिवर्तित किया जाने लगा। पूजा-पाठ, घड़ियाल घन्टे की बन्दी हो गई। अत्याचार और व्यभिचार का चक्र और बढ़ा। किसी भी कुटुम्ब के प्रधान के मरते ही वह सारा-का-सारा परिवार ईसू के शरण में ले लिया जाता था। आपत्ति करने वालों को सजाये मौत थी।

अनाचार की इस विकरालता से सम्पूर्ण प्रदेश कराह तो अवश्य उठा था परन्तु हिन्दुओं ने अभी अपने घुटने टेके नहीं थे। वे छत्रपति शाहू और पेशवा के पास अपनी उद्धार के हेतु सन्देश तो भेजते ही रहते थे साथ ही अपने धर्म और जाति की रक्षार्थ प्राणों की आहुति देने में भी संकोच नहीं करते थे। विशेष कर अंजुर और कलवे के प्रभुओं (कायस्थ) ने पुर्तगालियों को नाको चने चबवा दिये थे। मस्तिष्क और तलवार दोनों की उपयोगिता वे जानते थे।

यद्यपि फिरंगियों से प्रभुओं की आये दिन की मुठभेड़ का परिणाम होता था हिन्दुओं का सर्वनाश। उनके घरों को जला दिया जाता था। सम्पत्ति हरण कर ली जाती। अबलाओं द्वारा कामुकता की प्यास बुझाई जाती थी, परन्तु सब होने पर भी उनके धर्म की नींव तो सुरक्षित थी। जीवन को जीवन न समझ कर अपनी संस्कृति ने हितार्थ बलिदान होने की जागृति तो वर्तमान थी। यह क्या कम था? हिन्दुओं को संतोष था।

अंजुर के गिरजे का पादरी नोरोहना बड़ा विलासी था। उसने अपने कुछ आदमी केवल इसलिये लगा रखे थे जो रूपवती बहू-बेटियों का पता लगाकर उसे सूचित किया करते। पता लगते ही नोरोहना उनकी प्राप्ति के

हेतु नाना प्रकार के जाल बिछाने लगता। समझाना-बुझाना, धन-सम्पत्ति देना, फिर डराना धमकाना, परन्तु जब इनसे भी काम सिद्ध न होता तो वह बल का प्रयोग करता। घर जलवा देता। सिर उठाने वाले गोली का शिकार होते और अन्त में उसकी वस्तु उसके पास पहुंच जाती। इस प्रकार डामन से गोआ तक गोरों के अत्याचार से हिन्दू त्राहि-त्राहि करने लगे थे।

काशी दयाल प्रभु थे तो बड़े टेकी पुरुष पर नोरोहना द्वारा उनके दोनों जवान बेटों के बध हो जाने के कारण अब उन्हें भींगी बिल्ली बनना पड़ रहा था। उनकी दोनों भुजायें कट-सी गई थीं। वे असहाय हो गये थे। वैसे अब भी उन्होंने अपनी मूँछ झुकाई नहीं थी परन्तु एकमात्र अट्ठारह वर्षीय विधवा पुत्री ईरा को लेकर उन्हें कुछ दब कर चलना पड़ रहा था। इधर नोरोहना अपनी ताक में अलग बैठा था; यह बात बूढ़े प्रभु से छिपी नहीं थी। वैधव्य का आवरण ईरा के सौन्दर्य को कहां तक छिपाता? कीचड़ में पड़ कर कहीं कमल का रूप बदला है? काशीदयाल बड़े चिन्ता में थे। उन्हें अब कुछ न कुछ करना ही था अन्यथा ईरा का जीवन कितना दुखद और नारकीय होगा। इसका विचार आते ही उनकी आंखों से आंसू गिरने लगते। उन्होंने अन्त में अंजुर छोड़ देने का निश्चय किया। परन्तु होनहार प्रबल है। इसकी गति गुरु वशिष्ठ भी नहीं समझ सके थे।

नोरोहना को काशीदयाल के निकल भागने की सूचना मिल गई थी या नहीं, इसे निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता परन्तु जिस दिन उनके जाने की तैयारी थी उसके एक दिन पहले रात में उनकी इज्जत उनके सामने लुट गई। ईरा बल पूर्वक उठा ली गई और बुड्ढे को घर में बन्द करके आग लगा दिया गया। काशीदयाल जलकर राख हो गये। स्वर्ग में ईसा की आत्मा संतुष्ट हो रही थी।

गिरजा घर के निचले भाग में नोरोहना का विलास भवन था—सुन्दर और सुसज्जित। ईरा उसी भूगर्भ निर्मित भवन के एक कक्ष में लाकर डाल दी गई। लाने वाले चले गये। किसी ने कुछ कहा नहीं। ईरा ने इधर उधर दृष्टि घुमाई। अब वहां कोई नहीं था। उसने उठना चाहा परन्तु कुछ सोचकर वहीं बैठी रही। सम्भवतः वह शैतान कहीं छिपा देख रहा हो।

रात समाप्त हो चली। भोर का आभास मिलने लगा पर पादरी नहीं आया। ईरा भी उसी प्रकार बैठी सोचती रही। सबेरा हुआ। दिन चढ़ा।

एक व्यक्ति आया परन्तु वह पादरी जैसा नहीं दिख रहा था। उसने ईरा के समीप जाकर उसे उठने का संकेत किया। ईरा को उठना पड़ा। वह एक कमरे से दूसरे कमरे में होता हुआ तीसरे कमरे में आया। पानी तथा अन्य वस्तुओं को संकेतों द्वारा दिखलाकर चुपचाप चला गया।

लगभग एक घड़ी उपरान्त वह व्यक्ति दूध और फल दे गया। ईरा ने जलपान किया। दोपहर को भोजन आया पर उसने खाना नहीं खाया। और उसे दूसरे कमरे में रख आई। तदुपरान्त वह घूम-घूम कर मकान के प्रत्येक भाग को देखती रही कुछ ढूंढ़ती रही। धीरे-धीरे समय बीता। संध्या हुई, तब रात। पादरी नोरोहना आया। सफेद-काली डाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ। ईरा ने देखा और आंखें नीची कर ली। पादरी उसके समीप आकर बैठ गया। उसके मुंह से दुर्गन्ध आ रही थी। ईरा उठकर खड़ी हो गई।

'आपको नहीं मालूम हम आपसे मुहब्बत करता है। हमारा सब कुछ आपका है। यह मकान आपका है। आप यहां रहो और हमारा दिल को खुश करो। हम भी आपका दिल खुश करेगा। हम आपको बहुत दिनों से चाहता था।'

ईरा लजीले ढंग से बोली 'आप झूठ बोलता है।'

'नहीं। बिल्कुल झूठ नहीं बोलता। हम आपको बहुत दिनों से चाहता है। अगर चाहता नहीं होता तो आपको यहां लाता कैसे? बतलाओ?'

'लाने की क्या बात? हम तो स्वयं आपके पास आने के लिये बहुत दिन से छटपटा रहा था परन्तु उस बुड्ढा बाप से बच कर कैसे आता? मजबूर था। आज मेरा दिल नाच रहा है।'

ईरा की बातें पादरी के हृदय को बल्लियों ऊपर उछाल ले गई 'हमको बड़ा अफसोस है। हमें मालूम होता तो उस बड्ढे को कब का मरवा डालता।' उसने हाथ बढ़ाया ईरा के हाथ को पकड़ने के लिये।

ईरा तनिक और पीछे हटकर खड़ी हो गई और अपने हाथ को उठाकर प्रकाश की ओर ओट किया।

नशे में झूमता पादरी हँस पड़ा 'हम समझा।' उसने उठ कर प्रकाश गुल कर दिया।

प्रकाश का बुझना था कि ईरा ने झट से अपने उरोजों के मध्य छिपी हुई छुरी निकाली। बायें हाथ से उसने नोरोहना का हाथ पकड़ा और उसे पलंग तक लाई। नोरोहना का पलंग पर लेटना था कि ईरा की छुरी उसके

सीने को पार कर गई। एक पतली सी चीख निकल कर शान्त हो गई। काम तमाम हो गया। ईरा कक्ष से निकल कर जीने की ओर लपकी वह सीढ़ी चढ़ती हुई ऊपर पहुंची तो द्वार बन्द पाया। उसने इधर उधर हिलाकर खोलने का प्रयत्न किया परन्तु वह न खुल सका। ईरा कांप उठी। अब! नारी का हृदय व्याकुल हुआ। वह अंधेरे में खड़ी कुछ क्षण सोचती रही फिर दीवार के सहारे उतरने लगी। अभी दस-पांच सीढ़ी ही उतरी होगी कि अनायास हाथ के दबाव से दीवार में कुछ खुल गया। ईरा खड़ी हो गई। उसे भली भांति टटोला। वह एक द्वार था। उस ओर उतरने के लिये सीढ़ियां बनी थीं।

डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। ईरा बिना सोचे समझे उधर उतर कर आगे बढ़ चली। वह मार्ग था परन्तु अन्धकार इतना कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। ईरा के पैर फिर भी बढ़ते चले जा रहे थे। उनमें नवीन बल आ गया था। घण्टे, दो घण्टे और चार घण्टे, ईरा चलती रही पर रास्ते का ओर-छोर नहीं मिल रहा था। कुछ समय तक और चलने पर अचानक सूखी पत्तियां ईरा के पैरों से लगकर खड़खड़ा उठीं। मस्तिष्क अनुमान लगाने लगा। ईरा का हृदय पुलकित हो उठा। उत्साह में शक्ति आई। पत्तियों की खड़खड़ाहट उत्तरोत्तर बढ़ती गई। ईरा का मन नवीन आशाओं से आन्दोलित होने लगा। आशायें और अधिक बलवती हुईं जब क्षीण प्रकाश और मन्द समीर ने उसके अन्तर को गुदगुदा दिया। छोटे-छोटे जंगली पौधे दृष्टिगोचर होने लगे। वह बढ़ती हुई ऊपर एक जंगल में निकल आई।

चांदनी वृक्षों से छन-छन कर आ रही थी और जंगल रात के सन्नाटे में भयभीत विश्राम कर रहा था। रह रह कर विकराल जन्तुओं के गर्जन से वातावरण कांप उठता था। परन्तु ईरा निडर जंगल को चीरती, तीव्रता से चली जा रही थी। उसे न तो भूत पिशाच से डर था और न शेर चीते से। वह केवल नारकीय नोरोहना से अपने को बचा लेना चाहती थी—जीवन के लोभ से नहीं वरन् किसी अन्य लोभ से। वह पथ अपथ का ध्यान किये बिना अपने सामने कांटों पत्थरों से उलझती, दौड़ती चली जा रही थी। वह थोड़े समय में अधिक से अधिक दूर निकल जाने के लिये प्रयत्नशील थी।

ब्रह्म बेला समाप्त हो चली। पक्षियों का कलरव आरम्भ हुआ। परों की फड़फड़ाहट से प्रकृति प्रतिध्वनित हो उठी। थोड़े समय में भास्कर

की ज्योति चमकी। उल्लास और उमंग से पृथ्वी खिल उठी। ईरा उसी प्रकार अथकित अपने मार्ग पर चल रही थी। न उसे भूख थी न प्यास। केवल चलना उसका काम था बस वह चल रही थी। कहां जा रही थी, किधर जा रही थी—उसे कुछ भी ज्ञान नहीं। केवल इतना समझ रही थी कि पादरी उससे दूर होता जा रहा था। ईसाई उससे दूर होते जा रहे थे। यही उसकी मंजिल थी।

: २७ :

दूसरे दिन नादिरशाह भारत का सम्राट घोषित हुआ। और मुहम्मद शाह, निजाम तथा अन्य लोग बन्दी बनाये गये। मुहम्मदशाह तब भी अल्लाह ताला का बड़ा शुक्रगुजार था। उसकी आंखें तो नहीं निकलवाई गईं, सिर कटवाकर चाँदनी चौक में टंगवाया तो नहीं गया, कुत्तों से नुचवाया तो नहीं गया। वह मौन था।

दोपहर के समय सादत खाँ, नादिरशाह की आज्ञा से उपस्थित किया गया। सम्राट ने धमकाते हुये आदेश दिया कि तीन दिन के अन्दर-अन्दर बीस करोड़ रुपयों की भर्ती होना अनिवार्य है अन्यथा वह कुत्ते की मौत मारा जायेगा। सादत खाँ ने स्वीकार किया। तीसरे दिन सादत खां की लाश नादिरशाह के सामने पेश कर दी गई। सम्राट शव को देखकर हँसता रहा। सादत खां ने विष खा लिया था।

नूरबाई को अब नादिरशाह के पास रहना पड़ता था। परन्तु उसके अन्तर में गूंजती हुई ध्वनि—कन्हैया तोरे बिनु कछु न सुहाय—उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। उसमें सजीवता और एकनिष्ठा का प्राबल्य निखरा। आर्तनाद ने कन्हैया को सुनने के लिये विवश किया और एक दिन नूरबाई सबकी आंखों में धूल झोंकती हुई किले के बाहर हो गई। फिर नूरबाई किसी को देखने को न मिली। सम्भवतः कन्हैया ने उसे अपना लिया था।

नादिरशाह की घोषणा होते ही राजनीतिक दावों में पारंगत धोंदू

गोविन्द ने पेशवा को सूचित किया और साथ ही अपने लम्बे पत्र में यह भी लिखा '+ + + + नादिरशाह ईश्वर नहीं जो सारी पृथ्वी पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेगा। उसके पास भी बुद्धि है और वह अपने भले बुरे को भली भाँति समझ सकता है। जब उसे यह विदित हो जायेगा कि आपके पास सामना करने की शक्ति है तो वह युद्ध के स्थान पर आपसे मित्रता का सम्बन्ध स्थापित कर लेगा। कृपया आदेश दें कि हम लोग किस रूप से काम करें। आप अपनी शक्ति की दृढ़ता का परिचय अवश्य दिखावें और फिर अवसर आने पर दयालुता और नम्रता का भी भाव प्रदर्शित करें। मुझे आशा है नादिरशाह आपसे युद्ध कभी नहीं करेगा। कभी-कभी सफलतायें केवल शक्ति के प्रदर्शन से ही प्राप्त हो जाया करती हैं + + + +। इस समय सबकी दृष्टि आप पर लगी हुई है। विजय की पगिया पेशवा के अतिरिक्त दूसरा नहीं बाँध सकता। उत्तर भारत के सारे राजा आपके आने की प्रतीक्षा में हैं। आपके आते ही कुछ का कुछ हो जायेगा।'

पत्र पाते ही पेशवा चलने की तैयारी करने लगा। शाहू और बाजीराव दोनों इस विचार से सहमत थे कि लुटेरे को देश से निकाल कर मुहम्मदशाह की रक्षा की जाय। मुहम्मद बैरी होते हुये भी घर का है। उससे बाद में कभी भी निपटा जा सकता है। बाजीराव अपनी प्रेयसी सहित मालवा की ओर चल पड़ा।

नादिरशाह के सिंहासनरूढ़ होते ही फार्सियों को हर प्रकार की छूट दे दी गई थी। मनमानी आरम्भ हुई—सैनिकों की मनोवृत्ति के अनुसार। टोली बनाकर फार्सी सैनिक आते और बाजार से मनमाना सामान उठा ले जाते। पैसा माँगने पर दूकानदार पीटे जाते और उनकी दूकानें लूट ली जातीं। होनहार को कोई रोक नहीं सकता। एक दिन कुछ सैनिक गेहूं लेने के हेतु मण्डी में आये। अनायास उनमें से एक ने भाव पूछा। दूकानदार ने बता दिया। दूसरा सैनिक ऐंठ गया, 'इतनी बेईमानी। इतने दिनों से लूटते रहे फिर भी पेट नहीं भरा।'

दूकानदार अभी नये उम्र का था। बर्दाश्त कैसे होता? वह भी गर्म पड़ा 'म्यां जबान की लगाम काबू में रखो नहीं लेने के देने पड़ जायेंगे। जुल्म बहुत दिनों तक नहीं चलता।'

सैनिक का पारा बढ़ा। दूकानदार भी क्रोधित हुआ। बात बढ़ी और बढ़ती ही गई। आस-पास के दूकानदार इकट्ठे हो गये। गुबार तो मन में था ही हाथापाई होने लगी। फिर मार काट। फलतः कुछ सैनिक और

कुछ दूकानदार मारे गये। घटना फैली। किसी ने उड़ा दिया–बादशाह का किले में वध किया जा चुका है। तिनके ने अग्नि को प्रज्वलित कर दिया। शहर में आये हुए फार्सी सैनिक मार डाले गये। पड़ाव पर सूचना पहुँची। नादिरशाह की फौज निकल पड़ी।

सेनापति ने नादिरशाह से भेंट की और अपने सैनिकों का वध तथा नगर में फैली हुई अफवाह का हाल बताया। लुटेरे की आंखें चढ़ीं। क्रोध भड़का, हिन्दुस्तानियों की इतनी जुर्रत ? सेनापति ने भी पुट रखा। वह बौखलाया किले से बाहर निकला और सदर बाजार के रुवनुदौलत मस्जिद में जाकर बैठ गया। उसने अपनी म्यान से तलवार निकाली और आज्ञा दी, 'कत्लेआम हो।' राक्षसी सेना निरीह जनता पर टूट पड़ी। भेड़-बकरियों की भाँति औरत-मर्द-बच्चे सभी कटने लगे। घरों से औरतें बाहर खींच लाई गई और गुप्त अंगों में बर्छे और तलवार पेस-पेस कर पिशाच किलकारी करने लगे। नन्हें-नन्हें बच्चों को गेंद की भाँति उछाल कर बर्छों की नोक पर रोक लिया जाता।

घंटे आध घण्टे बरन् कई घण्टों तक यह नर संहार चलता रहा। दिल्ली की गलियां रुधिर से भींग गईं। लाशों से नगर पट गया। पर उस नादिर की तृप्ति नहीं हुई। वह बैठा उसी प्रकार अपनी तलवार से संकेत करता रहा। मुहम्मदशाह, निजाम आदि किले में बैठे अपनी जान की खैर मना रहे थे। किन्तु वजीर कमरुद्दीन से न रहा गया। उसनें जीवित रहने से मर जाना उचित समझा। वह निर्भीक नादिरशाह के पास पहुंचा। राक्षस की दृष्टि ने घूर कर देखा। नत मस्तक वजीर के मुंह से निकला।

कसे न मुन्द की दीगर बतेगे नाज कुशी।
मगर कि जिन्दा कुनी खल्कराब बाज कुशी ॥*

शैतान ने बुड्ढे वजीर को देखा। उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं। जंगली के जैसे ज्ञान चक्षु खुल गये हों। वह धीरे-धीरे अपनी तलवार म्यान में करने लगा। कत्लेआम बन्द हुआ।

* * * *

अचानक एक दिन फारस के वजीर को बाजीराव के मालवा की ओर

---

* अब कोई बाकी नहीं है जिसे आप अपनी नाज की तलवार से कत्ल करें। अब सिर्फ यह हो सकता है कि मरे हुये लोगों को जिन्दा कर उन्हें फिर कत्ल कर डालें।

आगमन की सूचना मिली। उसे पहले से भी भनक थी पर विश्वास नहीं हो रहा था। आज उसका बहुत कुछ अविश्वास जाता रहा परन्तु अपने शाह से कहने के पूर्व उसने फिर पता लगवाया; खबर सौ फीसदी सही निकली। वजीर का माथा ठनका। कहीं लेने के देने न पड़ जायं। उसने रात्रि को निस्तब्ध में अपने शाह से हाल बतलाया।

'तो तुम भी लड़ाई की तैयारी शुरू कर दो।' नादिर जैसे पेशवा को कुछ समझता ही न हो 'लगे हाथ इसको भी खत्म कर डालूं वरना यह कुछ-न-कुछ हमेशा कुराफात करता ही रहेगा।'

'लेकिन हुजूर जैसा फर्माते हैं वैसा होना मुश्किल है। बाजीराव की ताकत का मुकाबला नहीं किया जा सकता।'

'क्या?' नादिर का गर्व मर्दन हो रहा था।

'मैं हुजूर से सही अर्ज कर रहा हूं। पेशवा के साथ इस वक्त सारा हिन्दुस्थान है और आप बिल्कुल अकेले हैं। मुगलों से भी किसी तरह की मदद नहीं मिल सकती। ऐसी हालत में······गरीबपरवर को समझाना क्या है, सारी बातें आपसे बता चुका हूं अब जो हुक्म दें उसे तामील की जाय।'

लुटेरा सोचने लगा।

वजीर को अवसर मिला। 'वैसे भी हुजूर को यहां सल्तनत कायम तो करनी नहीं है फिर पेशवा से लड़कर एक उलझन क्यों मोल ली जाय। जितनी उम्मीद सरकार लेकर आये थे उससे कहीं ज्यादा कामयाबी हासिल हुई है। मैं समझता हूं इस दौलत से जहांपनाह सब कुछ कर सकते हैं।'

शाह ने निष्कर्ष निकाला—सम्भव है वह पेशवा को पराजित कर दे परंतु यह भी तो सम्भव है कि उसे पेशवा द्वारा पराजित होना पड़े और तब उसकी पराजय का अर्थ होगा जीवन की सारी आकांक्षाओं से बंचित रह कर कुत्ते की मौत मरना। वह इसके लिये बिल्कुल तैयार नहीं था। उसने वजीर की तरफ देखा, 'तब तो लौट चलना ही बेहतर होगा वजीरे आजम।'

'मैं गरीबपरवर को यही सलाह दूंगा।'

'ठीक है। तैयारी कराई जाय।'

इतिहासकारों का कहना है कि बीस करोड़ के स्थान पर लुटेरे ने लगभग एक अरब की सम्पत्ति जिसमें तख्त ताऊस और कोहनूर हीरा थे—लेकर अपने देश को लौट पड़ा। उसके लिये प्राण प्रिय था आन नहीं।

: २८ :

पेशवा बाजीराव अभी बुरहानपुर ही पहुँचा ही था कि दिल्ली से सूचना मिली—मुहम्मदशाह को पुनः सम्राट घोषित कर नादिरशाह अपने देश को लौट गया। उसी समय एक और कासिद आया। पत्र नादिरशाह द्वारा भेज हुआ था। पत्र में शाह ने पेशवा को चेतावनी दी थी कि भविष्य में उसे बड़ी इमानदारी और वफादारी से सम्राट की आज्ञाओं का पालन करना होगा अन्यथा वह किसी भी समय अपनी सेना भेजकर उसे दण्डित कर सकता है, इत्यादि-इत्यादि। पेशवा ने पूरा पत्र मस्तानी को सुनाया। मस्तानी मुस्कराई 'ठीक तो लिखा है। अब वह नहीं आयेगा केवल अपनी सेनायें भेज दिया करेगा।'

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े।

'परन्तु एक बात तो माननी ही पड़ेगी कि वह भागा बड़ी दिलेरी से।'

'बिल्कुल। इस दिलेरी की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।'

दोनों फिर हंसने लगे।

सैनिक लौटे। बाजीराव सतारा को चल पड़ा। शाहू का सन्देश आया था। सतारा में बड़ी धूमधाम थी। मस्तानी भी सतारा गई। पेशवा मस्तानी से क्षण भर भी अलग नहीं रह सकता था। सतारा में खूब धूमधाम रही जिसमें बाजीराव का स्वागत सत्कार विशेष रूप से किया गया। नागरिकों की ओर से उसे नानाप्रकार के उपहार दिये गये। छत्रपति ने खुले दरबार में उसकी प्रशंसा के गीत गाये और उसकी वीरता तथा कर्तव्य निष्ठा की भूरि-भूरि सराहना की। तदुपरान्त नादिरशाह द्वारा भेजे पत्र को भी पढ़कर दरबार में सुनाया गया। सभासदों ने नादिर की खूब खिल्ली उड़ाई। दरबार कहकहे से गूंज उठा। तीन दिन के उत्सव के उपरांत पेशवा पूना लौट आया।

बरसात की काली-काली घटायें और कड़कती बिजली के साथ जल की वृष्टि, रात को किसी वियोगिनी के लिये कितनी कष्टदायक सिद्ध होती है, इस वर्णन को कोई व्यथित हृदय ही भली प्रकार व्यक्त कर सकता है। मैं केवल अनुमान से कह रहा हूं कि ऐसी ऋतु में काशीबाई को अपनी आंतरिक पीड़ा से बड़ी बेचैनी होगी और ऐसा होना स्वाभाविक भी था। उसी महल में तो उसका पति किसी दूसरी स्त्री के सहित रह रहा था। क्या यह हृदय को भेदने वाली वस्तु नहीं थी? पति का अलगाव पत्नी के लिए किन-किन कारणों से विशेष

अखरता है, बताना कठिन है। काशीबाई अन्दर ही अन्दर जल रही थी परन्तु करती क्या, अपनी ऐंठन से विवश थी। बाजीराव 'मस्तानी महल' में मस्तानी के प्रेम पर अपने को न्योछावर कर चुका था। उसके लिये मस्तानी थी और मस्तानी के लिए वह। समय के खराद पर उसका प्रेम भी मानो नित्य निखरता चला आ रहा था। काशीबाई के सारे प्रयत्न असफल हुये। उसने जो कुछ सोचा उसका परिणाम विपरीत हुआ। जीवन की सारी आशाओं पर पानी फिर गया।

अपने कक्ष में बैठी काशीबाई किन्हीं घोर चिन्ताओं में व्यथित थीं कि किसी के आने की आहट मिली। उसने देखा अन्नपूर्णा (चिमना जी अप्पा की पत्नी) चली आ रही है। काशीबाई की पीड़ा उससे छिपी नहीं थी। अन्नपूर्णा ने बैठते ही कहा 'इस प्रकार अपने को घुला-धुलाकर मारने से क्या लाभ जीजी। मैंने कितनी बार पहले भी कहा, पर मेरी बात सम्भवतः तुम्हें फबती नहीं।'

'फबने-बबने की बात नहीं जाऊबाई परन्तु उससे लाभ ही क्या ? हर प्रकार से सोचा कोई अर्थ सिद्ध होता हुआ दिखाई पड़ता।'

'प्रत्येक काम में अर्थ निकालती हो न तभी···' अन्नपूर्णा चुप हो गई।

'किन्तु······।'

'जीजी, कुछ कार्य ऐसे भी हैं जो ज्ञान और तर्क की परिधि के बाहर होते हैं······।'

'पर·········।'

अन्नपूर्णा ने काटा 'मीन मेख न निकालो। एक बार कहने पर चल कर देखो। मुझे विश्वास है भाऊजी का प्रेम तुम्हें प्राप्त हो जायेगा। आत्म समर्पण, विशेषकर हम स्त्रियों के लिए यही सब कुछ है। इसके द्वारा क्या नहीं हो सकता ? वह दिन फिर आवेगा जब रात के सन्नाटे में यह कक्ष उनकी जोर-जोर बातों से गूंजेगा और तुम उन्हें धीरे-धीरे बोलने के लिए बार-बार कहती रहोगी, है न ?' वह अपनी भौहों को नचाती हुई काशीबाई को देखकर हंसने लगी।

काशीबाई के गंभीर चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं आया, 'अब ऐसे भाग कहां जाऊबाई !'

'है क्यों नहीं। तुम मेरे कथनानुसार चलकर तो देखो। मस्तानी, भाऊजी की आंखों से हट जायेगी। इसे तुम ध्रुव सत्य मानो। तो बोलो, कल उनसे मिलने जाओगी ?'

काशी अब भी हां करने में हिचकिचा रही थी।

'जीजी, पत्नी का पति से दुराव ऐसा कहीं तुमने पढ़ा है। यह लौकिक और पारलौकिक दोनों दृष्टि से निन्दनीय है। इसे त्याग दो जीजी। क्षण भर में सब ठीक हो जायेगा।'

'किन्तु अन्नो, मेरी कोई त्रुटि हो तब तो। दुराव तो उन्हीं की ओर से हुआ था। मैं ऐसा क्यों करने लगती? मुझे क्या किसी कुत्ते ने काट खाया था?'

'मेरी नहीं उनकी त्रुटि है। इसी मेरी के पीछे तो भाऊजी तुमसे छिन गये। पुरुष को चुनौती देकर विजित नहीं किया जा सकता जीजी। उसे पाने का मन्त्र है। सर्वस्व समर्पण। तभी वह हाथ का खिलौना बन सकता है। मस्तानी ने इसी सिद्धान्त को अपनाया है।'

अन्नपूर्णा की बात इस समय काशी को धंस गई। 'अच्छी बात है। तुम्हारा कहना भी करके देखे लेती हूं। कल उनसे मिलने जाऊँगी।'

अन्नपूर्णा काशीबाई के गले से लिपट गई 'यही मैं चाहती थी। अब देखती हूं भाऊजी को अपने पास कौन रोक लेता है।'

काशी का मन गुदगुदा उठा।

काशीबाई ने अन्नपूर्णा से जाने के लिए कह तो दिया परन्तु जब रात में लेटी तो उसके अहंकारी मन ने उसका घोर विरोध किया। मस्तिष्क में नाना प्रकार के तर्क-कुतर्क चलने लगे। फलस्वरूप उसने पति से मिलने के स्थान पर सौत से मिलने का निर्णय किया। दूसरे दिन मस्तानी के पास सूचना गई। दोपहर उपरान्त काशीबाई को मस्तानी ने बड़े आदर से लिया। स्वयं पैताने बैठती हुई मस्तानी बोली 'मेरे लिए आज्ञा हो। मैं आज धन्य हुई महारानी जी।'

काशी ने आज बहुत समीप से मस्तानी को देखा। वास्तव में उसका सौंदर्य अद्वितीय था। उसके हृदय पर ठेस पहुँची। ईर्ष्या जागी। तर्क ने सिद्ध किया। उसके पति ने उसे इसलिए त्यागा है कि मस्तानी अधिक सुन्दर है। काशी बाई का विवेक जाता रहा। वह बोली परन्तु कुछ रूखेपन से 'रूप का तुमने बड़ा अनुचित लाभ उठाया है मस्तानी। किसी के जीवन को बिगाड़ कर अपना जीवन बनाना। क्या यही वेश्याओं का धर्म है?'

वह मुस्कराई 'धर्म और अधिक कहता है। परन्तु मैंने ऐसा किया नहीं। आपको भ्रम है। रूप, पुरुष जाति की दृष्टि में महत्व अवश्य रखता है किन्तु साथ ही स्त्रियों में वह कुछ और भी ढूंढता है जो क्षणभंगुर

सौंदर्य से अधिक आकर्षक और जीवन को जीवन से बांध कर परमानन्द की ओर ले जाने वाला है।'

'परमानन्द की ओर नहीं अधोगति की ओर कहो। वेश्याओं के चंगुल में फँसे हुये मनुष्यों की अन्तिम दुर्दशा क्या दुनिया से छिपी है। भवरों की भाँति प्रत्येक पुष्प पर मंड़राने वालों की आंखें यहीं खुलती हैं।'

'तब तो जिन स्त्रियों के पति मँड़राने वाले भवरों की श्रेणी में आते हैं उन्हें वेश्याओं का बड़ा उपकार मानना चाहिये। उनके लिये वे रामबाण की भाँति हैं। है न?'

काशी तिलमिला उठी। 'मस्तानी, छोटे मुंह बड़ी बात शोभा नहीं देती। अपनी औकात से बाहर न जाओ। पेशवा साहब सदैव तुम्हारे नहीं बने रहेंगे। किसी न किसी दिन उनकी आंखों से पट्टी हटेगी। उस दिन तुम्हारी क्या दशा होगी कुछ विदित है?' वह आई थी कुछ और कहने परन्तु कहने लगी कुछ और।

मस्तानी ने फिर चुटकी ली 'आप भी भविष्य की बात करती हैं महरानी जी। जब आयेगा तो उसे भी झेल लेंगे। अभी से चिन्ता करके इन प्राप्त स्वर्गिक सुखों को क्यों रसहीन बनाया जाय? ऐसे अवसर जीवन में क्या बार-बार आया करते हैं? आपको अनुभव तो होगा ही?'

काशी बाई का क्रोध बढ़ा। एक वेश्या उससे इस प्रकार जबान लड़ाये। उसका सम्मान यहां तक घट गया है। उसने आंखें तरेरी 'मेरा अनुभव जानना चाहती हो? तुम्हें विदित नहीं कि जिस दिन मैं अपने पर उतर आऊंगी उस दिन तुम्हारी जड़ तक खुद जायेगी। पेशवा साहब से कुछ करते धरते नहीं बनेगा। जीवन के सारे मनसूबे मनसूबे ही रह जायेंगे।'

मस्तानी ने वैसे ही शान्त भाव से उत्तर दिया 'आप तो क्रोध में आती जा रही हैं महारानी जी। अपना मुंह ढंक कर चांद की उज्ज्वलता पर टिप्पणी नहीं की जा सकती। मेरी जड़ खुद सकती है। मुझे मिटाया जा सकता है परन्तु यह सब करने पर भी तो पेशवा साहब आपके नहीं हो सकते। आपका स्वार्थी हृदय अब उन्हें नहीं पा सकता। उन्हें धोखा नहीं······।'

मस्तानी के शब्द पूरे भी नहीं हुये थे कि उसके गाल पर तड़ाक से तमाचा पड़ा 'सैकड़ों घाट का पानी पीकर आज हृदय और प्रेम के आदर्श

को बघारने आई है। अपनी मर्यादा को बेच कर पेट पालने वाली कुलटा !'

मस्तानी के मुख मण्डल पर गम्भीरता तो अवश्य फैल गई परन्तु वहां रोष नहीं था। वह खड़ी हो गई 'इन्हीं आचरणों के द्वारा आपकी यह अधोगति हुई है। खैर, अब आप जाइये। भविष्य में पुनः यहां आने का साहस न कीजियेगा।' मस्तानी कक्ष के दूसरी ओर चली गई।

: २९ :

इस प्रकार ईरा ने चलते-चलते कई दिन और कई रातें समाप्त कीं परन्तु उसका चलना बन्द नहीं हुआ। प्यास नदियों, नालों और पोखरियों से बुझती थी और भूख खेतों में लगे नाजों की बालियों से। देह थक कर चूर हो रही थी, पैर चलने से जवाब देने लगे थे पर प्राण का मोह सब कुछ झेलते हुये उसे घसीटे लिये जा रहा था। जन विहीन असीमित मार्ग पर वह यात्रा की कितनी दूरी तय कर चुकी थी उसे विदित नहीं।

संध्या हो चली थी। ईरा इस समय जिस मार्ग से गुजर रही थी वह पूर्णतः जंगली था। आशा के सहारे कुछ दूर और आगे चलकर किसी गांव या पुरवे के समीप पहुंच जाने की कल्पना करना व्यर्थ था। सूरज छिप चला था। जंगल में भटकने के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता। ईरा ने अपने को किसी वृक्ष की शरण में ले जाना ही उचित समझा। अंधेरा पक्ष था। घटाटोप अंधेरिया होने में विलम्ब नहीं थी ? ईरा राम का नाम लेकर एक पेड़ के नीचे गुड़मुड़ा कर पड़ गई। उसके उपरान्त उसे संसार का कोई ज्ञान नहीं रहा।

प्रातः के मंद पवन में पक्षियों के कलरव ने भास्कर के आगमन का संदेश दिया। सवेरा हुआ। सूर्य की ज्योति बिखर कर निखर आई परन्तु ईरा की नींद नहीं टूटी। उधर से ब्रह्मचारी रूप में एक पुरुष निकला। बड़े-बड़े लटकते घुंघराले बाल और छोटी-छोटी डाढ़ी के अंदर आभायुक्त मुखमंडल उसके ब्रह्मचर्य और ज्ञान के द्योतक थे। ईरा के समीप

पहुंच कर वह महान आश्चर्य में पड़ गया। ऐसे बीहड़ वन में एक स्त्री का आगमन, अचरज ही था। उसने कमण्डल से जल निकाल कर दो-तीन बार छिड़का परन्तु ईरा सिकुड़ी हुई बेसुध पड़ी रही। ब्रह्मचारी का दयार्द्र मन द्विविधा में पड़ गया। संकटग्रस्त की सेवा करना कर्तव्य है परन्तु पर स्त्री का स्पर्श धर्म वर्जित। उसने पुनः जल डाल कर ईरा को जगाने का प्रयत्न किया। वह जागी और हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसने ब्रह्मचारी को देखा परन्तु इसके पूर्व कि वह कुछ बोले उखड़े पौधे की भांति वह फिर पृथ्वी पर लोट गई। ब्रह्मचारी ने झट से झुक कर अपने हाथों में उठा लिया।

जंगल से थोड़ी दूर चलकर कुछ ऊंची भूमि पर, पेड़ों की झुरमुट की सघनता में एक छोटी सी कुटी थी—बड़ी स्वच्छ और रमणीक। ब्रह्मचारी ने यहीं लाकर ईरा को लिटाया और उसकी मूर्छा दूर करने का उपचार करने लगा। ईरा की आंखें खुलने पर ब्रह्मचारी ने पूंछा 'देवी स्वस्थ हैं?'

ईरा टकटकी लगाये ब्रह्मचारी को कुछ क्षण देखती रही फिर हाथ जोड़े और स्वीकारात्मक रूप में सिर हिलाया। ब्रह्मचारी ने लाकर दूध दिया और विश्राम करने को कह कर बाहर चला गया।

संध्या समय ईरा स्वस्थ थी। कुटिया के बाहर जलते हुये लकड़ी के खुत्थों से स्थान प्रकाशमय हो रहा था। कुछ फासले पर वृक्ष के नीचे ब्रह्मचारी अपनी आत्म जिज्ञाजा में तल्लीन था। उस समय उसका रूप दर्शनीय था। ईरा झोपड़ी के भीतर चटाई पर लेटी देख रही थी। अधिक रात गये तक योगी अपने योगाभ्यास में लगा रहा। जब वह आया तो उस समय तक ईरा जाग रही थी। वह कुटी के द्वार पर बैठ गया।

'क्या देवी को मेरी प्रतीक्षा में जागना पड़ा? मैं……।'

'निद्रा देवी मेरे ऊपर इतनी कृपालु नहीं हैं महाराज। दिन भर तो सोती ही रही। आप के सोने का समय……।'

ब्रह्मचारी ने बीच में कहा 'कुछ समय रुक कर।'

दोनों चुप रहे। ईरा ने कुछ समय उपरांत फिर पूछा, 'इस जीवन को आपने कब से अपनाया है?'

'बाल्यकाल से। पिता माता की मृत्यु हो जाने के उपरांत।'

'आपका जीवन सुखी है।'

ब्रह्मचारी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'आपको अनुमान है पूना यहां से कितनी दूर होगा ?'

'काफी दूर। वहाँ पहुंचने में समय लगेगा।'

'और इधर अंजुर कितने कोस होगा ?'

'मैं ठीक ठीक नहीं बता सकता किन्तु उतना ही जितना यहां से पूना।'

ईरा ने संतोष की सांस ली। ब्रह्मचारी ने सिर उठा कर देखा 'देवी को पूना जाना होगा ?'

'ऐसी विवशता तो नहीं परन्तु निकली हूं इसी विचार से। देखिये पहुंच जाऊं तो समझूं।'

'दो-चार दिन देवी अब रुकें। स्वस्थ होने पर ही जाना हितकर होगा। वैसे जो सुविधा जनक हो।'

ईरा ने उत्तर न देकर प्रश्न पूंछा 'आपके साधन के इस मार्ग पर चल कर क्या सम्पूर्ण प्राणीमात्र मोक्ष की प्राप्ति में समर्थ हो सकता है ?'

'समर्थ होने न होने की बात संशयात्मक है पर चल सभी सकते हैं।'

'सभी चल सकते हैं ?'

ब्रह्मचारी मुसकराया, 'देवी का अभिप्राय सम्भवतः स्त्रियों से है ?'

ईरा चुप रही।

'मेरा निज का विचार इसके विपरीत है पर साथ ही मैं यह भी मानता हूं कि ब्रह्मांड में जो कुछ हो रहा है या होगा, सब में उसी सर्व शक्तिमान की प्रेरणा है। बिना उसकी इच्छा के कोई कार्य होता नहीं। प्रत्येक के लिये सभी सम्भव है और सभी असम्भव। जो होता है उसकी इच्छा है और जो नहीं हो रहा है उसकी अनिच्छा।'

'तब तो अपने सोचने विचारने या करने न करने का कोई प्रश्न नहीं ?' ईरा को आश्चर्य हो रहा था ब्रह्मचारी के कथन पर।

'बिल्कुल नहीं। यह मेरा विश्वास है और दूसरों को भी इसी प्रकार का विश्वास रखना चाहिये, यह मेरी सम्मति है।' उसने सामने आकाश की ओर देखा 'अब देवी सोने की आज्ञा दें।'

ब्रह्मचारी उसी पेड़ के नीचे आकर पड़ रहा।

: ३० :

पानी के अभाव में कुम्हलाया कमल दो-तीन दिन के भीतर विकसित होकर विहँस उठा। तरुणाई की मादकता अनायास सिहर उठी। सरसता के साथ व्याकुलता जागी और नवीन इच्छायें आन्दोलन करने लगीं। आकर्षण से परिपूर्ण प्रकृति नटी के सुन्दरतम आंगन में नये जीवन की यह भूमिका कितनी अनुपम कल्पनाओं से ओत-प्रोत थी कहा नहीं जा सकता। वर्षों कठोर साधनों और तपस्याओं के उपरान्त जिस हृदय को ईरा अपना कहने का साहस करती रही आज उसे अचानक साथ छोड़ कर दूसरे के पास जाना देख उसे दुख तो नहीं हुआ परन्तु उलझन बढ़ गई।

नित्य की भांति जब ब्रह्मचारी ब्रह्म बेला में स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर झरना से लौटा तो उसकी वेदी जहाँ वह बैठ कर वेदों का अध्ययन किया करता था, बड़े सुन्दर ढंग से लिपी पुती तथा विभिन्न पुष्पों से सुसज्जित थी। ब्रह्मचारी को अच्छा लगा। उसका अध्ययन अन्य दिनों के अतिरिक्त आज अधिक समय तक चलता रहा। जब उसने 'इन्द्राग्न्योरित्यस्य प्रजा पतिर्ऋषि। इन्द्रादयो देवताः। स्वराडविकृतिश्छन······।' पढ़ता हुआ यजुर्वेद बन्द किया तो ईरा दौड़ती हुई आई और वेदी के सहारे उसके पैरों के पास बैठ गई। घुटनों के नीचे भरी खुली गोरी-गोरी पिंडुलियां, चिकनी सुडौल उभरी लम्बी नंगी बाहें और लिपटे जूरे में जंगली सफेद लाल फूलों का पिराव किसी अदृश्य को दृश्य बना रहे थे। ब्रह्मचारी ईरा को देख कर मुसकराया, 'ज्ञात होता है स्वर्ग पहुंचने के लिये अब आकाश मार्ग छोड़ कर पृथ्वी मार्ग अपनाया जाने लगा है?'

'अभी तो केवल मार्ग बदला गया है महाराज! यदि भूमण्डल पर इसी प्रकार ब्रह्मचारियों की वृद्धि होती रही तो बहुत सम्भव है एक दिन स्वर्ग उठाकर यहीं लाना पड़े।' ईरा के अधरों पर हँसी खेल गई।

ब्रह्मचारी ने बात बदली 'देवी को यह स्थान कैसा लगा?' यह पूंछने वाला था कि देवी पूना कब जायेगीं परन्तु तत्काल स्मरण आते ही कि ऐसा पूंछकर आतिथ्य धर्म से च्युत होना पड़ेगा। उसने बात बदल दी थी।

'स्थान और स्थान के रखवाले की प्रशंसा करना छोटे मुंह बड़ी बात होगी। अब तो महात्मा से विनती है कि मुझे भी इसी सतमार्ग पर लगाकर जीवन को जीवन बना दें।'

'लगाने और न लगाने को मुझ में कहां सामर्थ्य है देवी परन्तु इतना मैं अवश्य कह सकता हूं कि इस एकाकी जीवन को अपनाने के पूर्व इस पर भलीभाँति सोच लेना अधिक बुद्धिमानी होगी। रास्ता ऊबड़-खाबड़ है। कठिनाइयाँ अधिक झेलनी होंगी।'

'कठिनाइयों से स्त्रियाँ नहीं घबड़ातीं। रचयिता ने इसकी उत्पत्ति भौतिक तापों को सहने और विश्व को सुखी और उन्नतिशील बनाने के लिये ही की है। हाँ, केवल उस दिन इनमें परिवर्तन आने की आशंका अवश्य होती है जब ये एकाकीपन अनुभव करने लगती हैं। वहीं इनकी पराजय है और विनाश भी, पर सौभाग्य से मुझे इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।'

'क्यों ?'

'मैं अकेली कहाँ हूं ? आप भी मेरे साथ हैं।'

ब्रह्मचारी हंसने लगा, 'मन ने दृढ़ निश्चय कर लिया है तो ठीक है। मैं देवी के रास्ते का कंटक नहीं बनना चाहता। पर.......... ।'

'पर वर के लिये अब स्थान नहीं। जो होना था सो हो गया। आपका यह वस्त्र त्यागा नहीं जा सकता।' ईरा मुसकरा रही थी।

'यह तो अभाव की पूर्ति है।'

'लाइये,' ईरा ने वेदी से पुस्तकें उठा लीं और कुटिया की ओर दौड़ गई। वह इस समय मेनका के रूप में थी।

ईरा पुस्तकें रखकर फिर दौड़ी आई 'देव पुरुष से एक बात पूछना चाहती थी।'

ब्रह्मचारी की दृष्टि उससे मिली।

'मेरे इस अनाधिकार चेष्टा से आपको किसी प्रकार का संकोच तो नहीं है ? मुझे अतिथि के रूप में रखा गया था न ?'

'होने पर कहा जा सकता है। इसे मैं असंगत नहीं मानता।'

ईरा रुकी, 'एक प्रश्न और पूछूं ?'

ब्रह्मचारी ने सिर हिलाया।

'ब्रह्मचारियों के सन्सर्ग में रमणियों का रहना शास्त्र वर्जित है न ?

'रमणी का, सन्यासिनी का नहीं। देवी का यह प्रश्न सन्देहात्मक है। नहीं कह सकता सन्देह मेरे ऊपर है या स्वयं पर।' ब्रह्मचारी के गालों पर सुर्खी दौड़ गई थी।

ईरा उसके पैरों पर गिर पड़ी। ब्रह्मचारी ने चौंक कर अपने पैर खींच लिये 'मुझे नरक में न ढकेलो लक्ष्मी। तुम पूज्यनीय हो।'

ईरा की आंखें डबडबा आई थीं। उसने हाथ जोड़े। 'मेरे पूंछने का अभिप्राय कुछ और था महात्मा। मैं............'

ईरा के जलपूर्ण नेत्रों ने ब्रह्मचारी के कोमल हृदय को अकुला दिया। उसे विश्वास हो गया कि ईरा का अभिप्राय कुछ और था। उसने सान्त्वना दी, 'मन को संयम की आवश्यकता है देवी। यही इस मार्ग का महामंत्र है।'

ब्रह्मचारी उठ कर दूसरी ओर चला गया।

: ३१ :

प्रकृति के आँगन में चाँदनी बिखर रही थी बड़ी सुकुमारता के साथ पवन गुदगुदाता हुआ, हंसता हुआ वन के प्रत्येक पशु-पक्षी, जड़-चेतन से मिल मिलकर सृष्टि के कण कण में व्याप्त सुन्दरता का बखान करता हुआ गले मिल रहा था। वन के वातावरण में निस्तब्धता थी। सचमुच वे सब आनन्दमय हो कर आनन्द के चिरस्थायित्व हेतु कामना कर रहे थे। रजनी बढ़ रही थी। चाँद खिल रहा था। समय में अपनापन था।

ईरा कुटिया में करवटें बदल रही थी। सामने पीपल के नीचे कुशासन पर ब्रह्मचारी निद्रागत था। शरीर की सौम्यता सोम रश्मियों से घुलकर ईरा के नेत्रों को छल रहीं थी। वह एक टक निहार रही थी। कुछ विचार रही थी। रात घट रही थी। अनायास ब्रह्मचारी ने करवट ली और उसका मुख दूसरी ओर हो गया। ईरा भी अवास्तविकता की धरातल पर आई। मन का ज्ञान जागा। भला बुरा, उपयुक्त अनुपयुक्त, सुघड़ असुघड़, पाप और तब इस लोक और परलोक—उसके मस्तिष्क में बहुत सी बातें चक्कर खाने लगीं। अतीत के चित्र आये। बाल्यकाल की रंगरेलियां, सम्पूर्ण युवा अवस्था की मादकता तब विवाह और वैधव्य। पति का रूप साकार हो उठा। आँखे

डबडबा आईं और वह कब तक रोती रही उसे ज्ञात नहीं। अचानक पक्षियों का कलरव सुनकर उसकी विचार शृंखला टूटी। उसने बाहर की ओर देखा, ब्रह्म बेला का समय हो चला था। वह उठ बैठी।

ब्रह्मचारी दैनिक क्रियायों से निवृत होकर लौटा तो उसकी पूजा बेदी लिपी-पुती स्वच्छ दिख रही थी, परन्तु बेदी पर बैठते ही उसे कोई चीज खटकी। उसने ध्यान दिया। वास्तव में पिछले दिनों की भांति आज बेदी पर कलात्मक रूप से विभिन्न पुष्पों का सजाव नहीं था। उसके मन ने स्पष्टीकरण किया—नियति अमर और स्थिर है। मनुष्य चंचल और क्षण भंगुर है। जो हो रहा है सब सुन्दर है और उसकी इच्छा है। फिर वह अपने पूजन में खो गया।

पूजन समाप्त होने पर पास बैठी ईरा ने प्रश्न किया, 'महात्मा से एक जिज्ञासा थी!'

'पूंछो देवी।' ब्रह्मचारी का काँतियुक्त मुखमंडल दर्शनीय था।

'संसार में सुख क्या है?'

'ईश्वर।'

'और दुख।'

'संसार।'

'और सुन्दर।'

'ईश्वर।'

'तब तो असुन्दर हुआ संसार।'

'बिल्कुल। संसार मिथ्या और सारहीन है। सत्य केवल ब्रह्म है जो अविनाशी और प्रजापति है। प्रजापति सर्वज्ञ है। सुख की निधि है। आनन्दमय है। मोक्ष की प्राप्ति ही जीवन का वास्तविक ध्येय है। यही कर्म की पराकाष्ठा है।'

'परन्तु एक बात नहीं समझ सकी देवात्मा! सर्व का पालक, सत्यमय, सुख का सागर ही मिथ्या जगत की उत्पत्ति करे। बड़ी विभिन्नता है महाराज! सत्य का प्रतीक मिथ्या को जन्म देकर उसके विकास हेतु प्रयत्न-शील रहे?'

ब्रह्मचारी मुसकराया, 'इसलिये कि सत्य का मूल्याँकन हो सके। मोक्ष के हेतु कर्मण्यता जागे।'

'क्या मोक्ष ही जीवन का लक्ष्य है?'

'हाँ देवी।'

ईरा ने कुछ सोचा, 'और इस अलौकिक तक पहुंचने का मार्ग ?'

'संसार से विरक्त होकर प्रजापति की एक निष्ठ उपासना ।'

'संसार से विरक्त होकर !' सम्भवतः ईरा को विरक्ति की भावना प्रिय नहीं थी ।'

'बिल्कुल विरक्त होकर' ब्रह्मचारी ईरा को अन्तर को टटोल रहा था 'जो त्याग नहीं सकता उसे ग्रहण करने का क्या अधिकार । यहाँ छोड़ो वहाँ लो। एक का परित्याग नितान्त आवश्यक है ।'

ईरा सोचने लगी । उसका निष्कपट हृदय बड़ी उधेड़बुन में पड़ गया । लोक त्यागा नहीं जा सकता और परलोक छोड़ा नहीं जा सकता । दोनों ही आनन्दमय आकर्षणों से परिपूर्ण हैं । अन्तर केवल प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष का था । किन्तु अप्रत्यक्ष उस की सीधी बुद्धि ने तर्क किया—ईश्वर को किसने देखा है, किन्तु लक्ष्य वही है सबका । उसी के आज्ञानुसार संसार का सारा कार्य संचालित होता रहता है । फिर·········उसके मस्तिष्क में एक और प्रश्न उठा । उसने पूंछा 'परन्तु महाराज, संसार में रत रह कर भी विदेह कहलाने वाले महाराजा जनक के लिये क्या कहा जा सकता है ?'

'ऐसे राजर्षि और महर्षियों की गणना असाधारणों की कोटि में की जाती है देवी । हमारे तुम्हारे लिये तो विरक्ति की भावना ही मोक्ष के मार्ग पर सफलता का एक मात्र साधन होगा ।' ब्रह्मचारी मानो अन्तर्यामी होकर सब कह रहा था ।

ईरा ने सिर उठा कर ब्रह्मचारी को देखा । उसके सौम्य मुख पर प्रसन्नता झलक रही थी । सन्यासी ने भी ईरा को ध्यान पूर्वक देखा । 'त्यक्त को' वह बोला 'ग्रहण करने की लालसा भविष्य में मृगतृष्णा बनकर जीवन को कुरूप बना देगा । इसे लोक परलोक दोनों छूट जायेंगे । वह नर से नराधम हो जायेगा और फिर जन्म जन्मान्तरों तक जो क्लेश झेलने पड़ेंगे वह अवर्णीय हैं ।' उसने नेत्र मूंद लिये । 'अतीत का सौख्य और उससे प्राप्त क्षणिक आनन्द के संस्मरण सम्भवतः आज देवी के मन को व्याकुल कर रहे हैं । किन्तु यह मन की चंचलता सर्वनाशी है । इसे वश में करना बहुत आवश्यक है । भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुये कहा था—

असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।

अभ्यासेनतु कौन्तेय वैराग्येण चग्रह्यते ॥*

अभ्यास करो लक्ष्मी तुम्हारी आत्मा परमानन्द को अवश्यमेव प्राप्त होगी।' वह उठ खड़ा हुआ 'ले जाओ पुस्तकें रख दो।'

ईरा ने कुछ आगे तो नहीं पूछा लेकिन उसके मन ने संतोष का अनुभव नहीं किया। उसके चित्त को शान्ति नहीं मिली। वह पुस्तकें लेकर चली आई और बहुत समय तक कुटिया में बैठी मन में तर्क वितर्क करती रही। रास्ता ढूंढती रही।

: ३२ :

तीसरे दिन पूजा के उपरान्त ईरा ने फिर प्रश्न किया 'कल देव पुरुष से संकोचवश पूंछ न सकी थी किन्तु मनन चिन्तन के उपरान्त भी अभी तक मुझे शान्ति का आभास नहीं मिला। चित्त की एकाग्रता मे स्थिरता का जैसे अभाव होता जा रहा है। जिस उत्साह से मैं महाराज की शरण में आकर मोक्ष के लिए लालायित हो उठी थी उसमें यह परिवर्तन क्यों?'

ब्रह्मचारी मन ही मन हंसा मानो उसे ईरा के मनोभावों का पूर्व ज्ञान था 'प्रवृत्ति का सम्मोहन और निवृत्ति के प्रति संशयात्मक विचारों में उलझा हुआ मन निष्कर्ष पर पहुँच कर भी वहां ठहर नहीं पाता देवी। वह प्रत्यक्ष देखता है। अप्रत्यक्ष उसके लिये क्यों और कैसे का रूप धारण करने लगता है और इसी क्यों और कैसे के हेतु योगिराज ने वैराग के सहित निरन्तर के अभ्यास की सीख दी है।'

'पर महात्मा, क्या वैराग्य के अतिरिक्त दूसरे मार्ग का अनुकरण नहीं किया जा सकता? राधिका ने तो कन्हैया को दास बना लिया था। क्या इसकी महत्ता उससे अधिक नहीं है?' ईरा डरती-डरती बहुत दूर निकल गई थी।

---

*हे महाबाहो, निस्सदेह मन चंचल और कठिनत से वश में होने वाला है परन्तु हे कुन्ती पुत्र अभ्यास स्थिति के लिये बारंबार प्रयत्न करने और वैराग्य से इसे वश में किया जा सकता है।

'निस्संदेह अधिक है। परन्तु यह दुस्तर भी है।'

'दुस्तर है!'

'अत्यधिक देवी। प्रेम का पथ सीधा है किन्तु उस पर चलकर निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचना बड़ा ही कठिन है। पर वैराग्य का पथ ऊबड़-खाबड़ होते हुये भी निर्दिष्ट स्थान तक पहुंचने में विलम्ब नहीं होता।'

'धृष्टता के लिये क्षमा चाहूंगी महाराज, मंजिल के लिये पहले ही से कामना क्यों की जाय? चलना केवल अपना कर्तव्य है। बस इतना संतोष क्या उस निश्चित स्थान तक पहुँचने के लिए पर्याप्त नहीं है?'

ब्रह्मचारी मुस्कराया 'यह कर्मक्षेत्र की बातें हैं देवी सन्यास क्षेत्र की नहीं। यहां निर्दिष्ट स्थान की कामना पहले है कर्तव्य की पीछे। फल, सृष्टिकर्ता के आधीन नहीं छोड़ा जाता वरन् उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रह कर उसे प्राप्त किया जाता है। यहां कर्तव्य नहीं अधिकार है। वह रुका; कुछ सोचता रहा फिर बोला 'राधिका का प्रेम समाज और काल की परिधि के भीतर सीमित है। उसका रूप दूसरा है। उसकी अवस्था दूसरी है। वह······'

बीच में हीरा बोल पड़ी 'पर उसे सीमाओं का उल्लंघन भी करते देखा गया है महाराज।'

'सामाजिक सीमाओं का, कालिक सीमाओं का नहीं।'

'तो क्या वह कालिक सीमाओं का उल्लंघन करता ही नहीं?'

'करता है परन्तु तब उसकी अवस्था दूसरी हो जाती है। फिर वह प्रेम के रूप में नहीं वैराग्य के रूप में दिखलाई पड़ने लगता है। सहयोग की भावना समाप्त हो जाती है। सीधे आत्मा परमात्मा से बातें होने लगती हैं। ब्रह्म की प्राप्ति के हेतु प्रयत्न होने लगता है।'

ब्रह्मचारी के कथन में चाहे कितनी गूढ़ता हो परन्तु इस समय हीरा की की बुद्धि उसे स्वीकार करने में असमर्थ हो रही थी। उसका हृदय टूक-टूक हो रहा था। उसकी दुनियां बिगड़ रही थी। उसकी इच्छायें उजड़ रही थीं। कुछ क्षणों तक मुंह लटकाये मौन सोचते रहने के उपरान्त वह बोली 'संभवतः प्रेम का स्थान आपकी दृष्टि में नहीं के समान ही है?'

'ऐसा तो नहीं कहा जा सकता परन्तु हां, प्रेम का जो स्वरूप इस समय देवी के आंखों के सामने नाच रहा है, उसे मैं हेय समझता हूं। वह कुरूपता लिये है। उसका अन्त सर्वनाशी है। मन के आवेगों को थामना ही जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति कर लेना है। देवी ने मेरे भावों को समझ लिया होगा।' वह उठ खड़ा हुआ। उसने सब कुछ कह डाला था।

ईरा पुस्तकें उठा कर कुटिया में चली आई।

ईरा बड़ी रात गये तक जन्म और मरण तथा उनका अस्तित्व यौवन और बुढ़ापा, समाज और उसके नियम, दुख-सुख और उसके प्रति विभिन्न लालसायें और कामनायें, प्रेम और प्रेम की मर्यादा, मोक्ष और उसकी सीमा तथा वहां तक पहुंचने का मार्ग इत्यादि प्रश्नों पर विचारती रही। उन्हें समझने की चेष्टा करती रही परन्तु निष्कर्ष का कोई छोर पकड़ में नहीं आ रहा था। निराशाओं से परिपूर्ण तथा यौवन की मादकताओं के बोझ को ढोने में असमर्थ उसका मन इस समय अपने को अकेला और आश्रय विहीन अनुभव करने लगा। उसके नेत्र कोरों से अश्रुकण छलक आये और वह रोती सो गई।

नित्य की भांति आज भी ईरा ने ब्रह्मचारी की वेदी को फूलों से सजाकर पुस्तकें रख दी तदुपरान्त वह अपने अन्य कार्यों में लग गई। कुछ समय उपरान्त जब उसकी दृष्टि वेदी की ओर गई तो वहां ब्रह्मचारी नहीं था। उसने ऊपर देख कर समय का अनुमान लगाया। समय अधिक हो गया था। आते होंगे—सोचकर वह अपने कार्यों में व्यस्त हो गई। थोड़ी देर बाद फिर उसने देखा परन्तु ब्रह्मचारी की वेदी सूनी थी। सन्देह का अंकुर फूटा। स्वाभाविक था। नियमी के नियम ही तो उसे जीवन की पराकाष्ठा पर पहुंचा देते हैं। उसने इधर-उधर देखा, तब झरने की ओर गई परन्तु वहां भी ब्रह्मचारी नहीं दिखलाई पड़ा। उसने जंगल में ढूंढने का प्रयत्न किया लेकिन लेकिन वह कहीं हो तब ता।

ईरा अपनी चिन्ता भूल कर ब्रह्मचारी की करने लगी। प्रतीक्षा में बैठे-बैठे सबेरे से से सांझ हो गई ब्रह्मचारी नहीं आया। रात का अंधेरा पक्ष फैला। बन की भयानकता उसे डराने-लगी। जीवन में प्रथम बार उसके अन्तर में भय ने प्रवेश किया था। रात के बढ़ाव के साथ-साथ उसके भय में भी वृद्धि हुई। बन्द कुटि में एक ओर सिकुड़ी हुई वह अपनी जिन्दगी की खैर मनाने लगी। राम-राम करके सबेरा हुआ, जान बची, प्रकाश बढ़ा। सोचने-विचारने की चैतन्यता आई। ज्ञान अज्ञान का रूप निखरा। आत्मा ने बुद्धि को राह बतलाया। हृदय और मस्तिष्क दोनों ने अपनाया। अब ईरा निष्कर्ष पर आई। भ्रम का पर्दा फट गया था न ? दिन अधिक चढ़ आया था पर मन को एक निधि मिल गई थी, वही निधि जो प्रथम बार ब्रह्मचारी से भेंट होने पर मिली थी।

सुबह का भूला अगर शाम को घर लौट आये तो वह भूला नहीं कहलाता। वह सचमुच अब भूली हुई नहीं थी। उसने प्रसन्न चित्त स्नान किया, पूजा-पाठ किये, फिर कुछ फलों से क्षुधा की तृप्ति की। थोड़े से फल उसने एक पोटली में बांध लिये तदुपरान्त ब्रह्मचारी की वेदी को मस्तक से लगाया। कुटिया में आई। पुस्तकों को नमस्कार किया। फिर कुटिया को चूमती हुई अपने मार्ग पर निकल पड़ी। उसका मुंह पूना की दिशा में था।

: ३३ :

ईरा अपने पथ पर—कर्तव्य पथ पर चलती जा रही थी। मन आह्लादित था। वर्तमान भूल गया था। अतीत के प्रति श्रद्धा थी और भविष्य के लिए उत्कण्ठा। मार्ग कण्टकपूर्ण था, मंजिल दूर थी, पर पथिक साहसी था और वहां तक पहुँचने की उसमें दृढ़ता थी। प्रकृति सौन्दर्यमय हो रही थी और उसकी संगिनी थी। समयानुसार ईरा कभी वृक्ष के नीचे तो कभी छोटे पुरवों में रुक कर रात व्यतीत करती और दूसरे दिन गांव वालों के बतलाये रास्ते पर पूना के लिए प्रस्थान देती। उसे पूना पहुँचना है बस इतना ही उसके लिए पर्याप्त था। कर्तव्य पूर्ति की लगन और उससे प्राप्त आन्तरिक आनन्द व्यक्ति विशेष से असम्भव को सम्भव करा देता है। पक्ष दो पक्ष, मास दो मास ईरा खाती-पीती-सोती-गाती अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर बढ़ती जा रही थी। उसे पूना अवश्य पहुँचना था। मनुष्य विचारों से बँध कर चलता है या परिस्थितियों से, परिवर्तन स्वाभाविक है या अस्वाभाविक और यदि स्वाभाविक है तो क्यों और अस्वाभाविक है तो क्यों—इसे अभी समझना होगा।

क्षितिज के किनारे दूर तक फैली श्वेत बादलों की पतली लीक और उन लीक के मध्य में घूमता हुआ सूर्य का विशाल लाल चक्र नभमण्डल में आलिमा तो फैला ही रहा था मूठा मूठा नदियों के आलिंगन में खोई हुई वह छोटी सी नगरी भी आकर्षण हो रही थी। पूना की छटा दर्शनीय थी। छै खंडों का भव्य भवन 'शनिवार वाड़ा' के ऊपर लहराता हुआ भगवा ध्वज

प्रत्येक पथिक के लिये सुख और आनन्द का प्रतीक था। ईरा ने झण्डे का देखा। मन पुलकित हो उठा। सिर नवाकर नमस्कार किया और जल्दी-जल्दी पग बढ़ाने लगी। संध्या के पहले-पहले वह नगर में प्रवेश कर चुकी थी।

संयोग की बात पेशवा पूना ही में था। ईरा ने तत्काल मिलना उचित समझा। उसकी सूचना भेजी गई। बाजीराव ने मिलने के लिए बुलाया। ईरा ने शिष्टतापूर्वक प्रणाम किया। पेशवा के संकेत पर बैठ गई। पेशवा ने परिचय पूंछा और उसके आने का कारण। ईरा ने सारी कहानी आदि से अन्त तक सुना दी। बाजीराव सुनता रहा और सोचता रहा। उसे दुख तो अवश्य हुआ परन्तु प्रसन्नता भी थी। ईरा के वीरत्व पर उसे गर्व था। वह अपने को रोक न सका 'तुम्हारी वीरता सराहनीय है देवी। मैं बड़ा प्रसन्न हूं। तुम यहीं रुको। तुम्हारी सारी इच्छायें पूर्ण हो जायेंगी। चिम्मा जी के सेनापतित्व में मैंने सेना भेज दी है। उस प्रदेश से फिरंगियों का अस्तित्व अब मिट जायेगा। लड़ाई समाप्त होने पर तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चली जाना। ठीक है न ?'

'परन्तु..................'

पेशवा ने ध्यान से देखा 'कहो-कहो। घबड़ाने की बात नहीं।'

'मैं भी वहीं जाना चाहती थी पेशवा साहब।'

पेशवा मुस्कराया 'युद्ध में ?'

'जी।'

'अच्छी बात है।' ईरा का प्रस्ताव पेशवा को भला मालूम हुआ। 'कल चली जाना। जाने का प्रबन्ध हो जायेगा।' द्वारिक को बुलाकर उसने प्रबन्धार्थ आदेश दे दिया।

दूसरे दिन घोड़े पर आरूढ़ ईरा उसी मार्ग पर चल पड़ी।

* * * * * * * *

पुर्तगालियों के अत्याचार ने शाहू और पेशवा को विवश किया था कि वे जनता के हितार्थ अपनी सहायता देकर फिरंगियों को उचित सीख दें और उस प्रदेश में मराठों की पूर्ण सत्ता सदैव के लिए स्थापित कर दें। अस्तु, पेशवा के आज्ञानुसार इस बार स्वयं चिम्मा जी एक विशाल सेना सहित उस प्रदेश में आ डटा था।

चिम्मा जी ने प्रथम कोंकण इलाके का निरीक्षण किया और आवश्यकता-

नुसार विभिन्न स्थानों पर योग्य सेना गोपों की तैनात की। फिर उसने एक एक करके आस पास के सारे दुर्ग पुर्तगालियों से छीन लिये। केवल बसीन का दुर्ग शेष रह गया।

डेढ़ मील के त्रिकोण आकार में फैला हुआ बसीन का दुर्ग उस युग में अपनी सुदृढ़ता के हेतु विख्यात था। दीवार की ऊँचाई बीस से चालीस फुट तक और मुटाई पाँच फुट थी। उसके पूरब में दलदल, पश्चिम में समुद्र की उत्तुङ्ग तरंगें और दक्षिण में बसीन की खाड़ी थी। केवल उत्तर में पतला सा सँकरा रास्ता था जिसके द्वारा दुर्ग में प्रवेश किया जा सकता था। गोरों को अपने दुर्ग पर भरोसा था जो स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। इस पर न तो अभी तक किसी का अधिकार हो सका था और न भविष्य में होने की सम्भावना पाई जाती थी। दूसरे पुर्तगालियों ने भी खूब तैयारी कर रखी थी। वे चिमना जी के इरादों से अनभिज्ञ नहीं थे।

ईरा युद्धस्थल पर उस समय पहुँची जब बसीन दुर्ग का घेरा पड़ चुका था परन्तु सफलता के कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। कई बार मराठों ने उस एक मात्र मार्ग से आगे बढ़ने का प्रयास किया परन्तु फिरंगियों की धुआंधार गोलियां उन्हें पीछे हटने के लिए विवश कर देती थीं। मराठों के मनसूबे ढीले पड़ने लगे। स्वयं चिमना जी बड़ा चिन्तित हो रहा था।

युद्ध की डावांडोल स्थिति की जानकारी प्राप्त कर लेने के उपरान्त ईरा ने चिमना जी से मिलने का निर्णय किया। आज्ञा मिलने पर ईरा चिमना जी के शिविर में लाई गई। चिमना जी ने सरसरी दृष्टि से उसे देखा फिर पूंछा 'कहो देवी।'

'श्रीमन्त संशय न करें, मैं इसी प्रदेश की रहने वाली हूं और अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार आपको कुछ सलाह देना चाहती थी।'

चिमना जी ने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाया।

'मेरे विचार से यदि सुरंगें खोदकर बारूद के द्वारा क़िले की दीवार दो चार स्थानों पर तोड़ दी जाय तो सम्भवतः आपको दुर्ग पर अधिकार करते देर न लगेगी।'

चिमना जी के चेहरे पर फैलती हुई गंभीरता कुछ हलकी हुई और इसके पूर्व कि वे कुछ बोलें ईरा ने आगे कहा 'और यदि श्रीमन भरोसा करें तो यह सेवा कार्य मुझे सौंपा जाय। मुझे बड़ी अभिलाषा है। अनाचारियों के रुधिर से हृदय को अत्याधिक शांति मिलेगी।'

'परन्तु.........।'

'मुझ पर विश्वास करें श्रीमन। मैं पूना में पेशवा साहब से मिल कर चली आ रही हूं। विजय के उपरांत मैं अपनी कहानी श्रीमन से निवेदन करूंगी। अभी इस कार्य के लिये आज्ञा दें।'

चिमना जी कुछ क्षणों तक सोचते रहे तदुपरांत बोले 'इस समय देवी विश्राम करें। कल इस प्रश्न पर निर्णय किया जायेगा।' द्वारिक को बुलाकर उन्होंने समुचित प्रबन्धनार्थ आज्ञा दे दिया।

दूसरे दिन आज्ञा मिल गई। ईरा के सहयोग से सुरंगें खोदी जाने लगीं। रात को काम होता और दिन को विश्राम। उधर गोरों को भ्रम में रखने के लिये मराठे 'हर हर महादेव' करके दुर्ग में घुसने का झूठा प्रयास करते और फिर पीछे लौट आते। फिरङ्गियों की छाती गज-गज भर की हो जाती। रात को दुर्ग में बड़ी रंगरेलियां मनाई जाती। पुर्तगालियों के क्या कहने थे ?

सुरंगें खुद गईं। बारूद बिछा दी गई। उड़ाने का काम स्वयं ईरा ने अपने जिम्मे ले लिया। ईरा और चिमना जी के बीच समय निश्चित हुआ। दिन के प्रथम पहर में सेनापति ने आदेश दिया। मराठे सैनिक काल के रूप में 'हर हर महादेव' कहते हुये दुर्ग पर टूट पड़े। पुर्तगालियों की गोलियां मराठों को भूनने लगीं परन्तु सैनिक दृढ़ रहे। उनके साथ एक नवीन आशा की शक्ति काम कर रही थी। इसी बीच अचानक धमाके का शब्द हुआ और सामने किले की दीवार का थोड़ा सा भाग गिर पड़ा। मराठों ने जय घोष की और उस नवीन मार्ग से धँस पड़े। फिरंगियों ने भी बहादुरी दिखलाई और उनके गोले, गोलियों की बौछार से पृथ्वी आकाश एक हो गया। भयंकर युद्ध होने लगा। इसी बीच एक और धमाके का शब्द हुआ। दीवार थोड़ी-सी और टूटी। मराठे और उत्साहित हुये। पुर्तगालियों में कुछ शिथिलता आई। पर वे पीछे हट कर फिर जम गये। घमासान युद्ध होने लगा। दोनों दलों में कोई भी पीछे हटने को तैयार नहीं था।

ईरा चिन्तित मन युद्ध की विकरालता देख रही थी। निर्धारित समय निकल चुका था पर अभी तक तीसरी सुरंग नहीं फटी थी। यही उसकी उलझन थी। उसे विश्वास था कि तीसरा धमाका पुर्तगालियों के भाग्य का फैसला कर देगा। उसने कुछ देर और प्रतीक्षा की लेकिन सुरंग नहीं फटी। अब उसके पास सोचने का समय नहीं था। उसने स्वयं जाकर देखना उचित समझा। वह दौड़ती हुई वहां पहुंची ही थी कि बारूद ने

सुरंग को उड़ा दिया। एक बड़ा सा मार्ग दुर्ग में प्रवेश करने के लिये बन गया। मराठे हरहराते हुये घुस पड़े। हताश गोरे भी अन्तिम दांव आजमाने के लिये मराठों में गुंथे। तलवारों की पैंतरेबाजी लगभग दो घण्टे तक चलती रही। गेहूं जौ की बालियों की भांति मराठों ने अंग्रेजों की छंटनी की। पराजित अंग्रेजों को सफेद झंडा दिखलाना पड़ा। चिमना जी ने युद्ध बन्द करने की आज्ञा दी। उसी समय एक सैनिक ने आकर चिमना जी से कुछ कहा। वे घबड़ाये हुये उसके साथ हो लिये। घटनास्थल पर पहुंच कर उन्होंने देखा—ईरा जल कर ऐंठ गई थी। सेनापति का मस्तक नत हो गया और उनकी आंखों से आंसू टपटप करके गिर पड़े।

दूसरे दिन संधि वार्ता हेतु या यों कहा जा सकता है जीवन-भिक्षा हेतु पुर्तगाली प्रतिनिधि आया। चिमना जी अप्पा ने जीवन भिक्षा दे दी। इतिहास साक्षी है कि दुर्ग के समस्त अंग्रेजों को अपने जहाज में बैठ कर चले जाने का आदेश दिया गया। अत्याचारियों से देश मुक्त हुआ। चिमना जी ने कृष्ण के रूप में अवतरित होकर कंस का बध किया फिर भी उन्होंने गिरजाघरों को तुड़वाया नहीं। ईसाई धर्म के मानने वालों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया। धार्मिक स्वतन्त्रता प्रत्येक को दी गई। जनता ने चैन की सांस ली। जल और थल दोनों पर मराठों का आधिपत्य जम गया।

: ३४ :

काशीबाई ऊपर से शांत थी परन्तु अन्तर कोयले की भट्ठी की भाँति जल रहा था। मस्तानी उसके लिये नागफनी का कांटा हो रही थी। वह जितना उसे निकालने का प्रयत्न करती वह उतना ही भीतर की ओर धंस कर पीड़ा को बढ़ा रहा था। किन्तु वह अपनी जिद्द पर उतर आई थी। चाहे पड़े छे या नौ लेकिन एक बार और वह अपनी बुद्धि और शक्ति की परीक्षा करेगी। उसे विश्वास था कि इस बार सफलता अवश्य मिलेगी

परन्तु उस पगली को यह विदित नहीं कि जिसको वह विजय समझती है वह भी तो उसके लिये पराजय ही है।

मस्तानी स्वर्गिक सुख लूट रही थी। पेशवा लुटा रहा था। प्रेम का क्षेत्र विस्तृत हो रहा था। आनन्द नित्य नवीनता का बाना पहिने दोनों को उल्लसित करता हुआ जीवन की स्थिरता को अमरता के रूप में ढाल रहा था। बड़े सुख के दिन व्यतीत हो रहे थे। पेशवा ने भी समाज की चिन्ता छोड़ दी थी। वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचा था कि जब समाज मेरी चिन्ता नहीं करता तो मैं ही उसकी चिन्ता क्यों करूं? भविष्य से वह डरता नहीं था। कर्तव्य करना उसका धर्म था सो वह कर रहा था। पेशवा की इस मनोवृत्ति से मस्तानी को भी बड़ी शांति मिली थी। लोक की लांछना से तो बच सकी अन्यथा आने वाली पीढ़ियां उसे ही दोषी ठहरातीं। मुसलमानों को म्लेच्छ और हिन्दुओं को श्रेष्ठ समझने वाले समाज के ठेकेदार पेशवा के पथ भ्रष्ट होने का सारा अपराध उसी के सिर मढ़ देते। अब मस्तानी के सामने केवल एक प्रश्न था और वह था अपने प्रेम को अद्वितीय बना देना। बस इसी में वह रत थी।

पुर्तगालियों को चिमना जी अप्पा की विजय का समाचार मिला। बाजीराव गदगद हो उठा। बधाइयां भेजीं और उसके स्वागतार्थ नाना प्रकार की पूना में तैयारियां कराने लगा। इसी बीच उसे सूचना दी गई कि निजाम का लड़का नासिरजंग एक विशाल सेना सहित औरंगाबाद से चल पड़ा है और वह शीघ्र ही गोदावरी पार करके मराठा प्रदेशों को रौंदना प्रारम्भ करेगा। जनता के हितार्थ पेशवा को जल्द बढ़ कर रोकना अनिवार्य है। पेशवा ने अविलम्ब अपनी सेना को कूच करने का आदेश जारी किया।

पेशवा ने जब अपने सामान के साथ-साथ मस्तानी के सामान को भी जाते देखा तो उसने रोका 'तुम आज कल कुछ अस्वस्थ हो न?'

'तो क्या हुआ। आपके साथ जहां घोड़े पर बाहर निकली सब ठीक हो जायेगा।'

'जैसे तुमने वैद्यक पढ़ रखी है? अगर तबियत खराब हो गई तो?'

'तब तो काम ही बन जायेगा। बिरले को ऐसा सौभाग्य प्राप्त होता है महाराज! आपके चरणों में पड़ी हुई मेरी आत्मा मुझसे छुटकारा ले ले। इससे भी बढ़ कर और कोई बात होगी। मेरी तो साधना सफल हो जायेगी।'

'तो तुम अपने स्वार्थ के अनुसार प्रत्येक काम करती हो ?' बाजीराव ने मुसकराकर बात को हलका करना चाहा।

'इसी स्वार्थ में मेरा परमार्थ है। ऐसा हो जाय तो क्या कहना है ?'

पेशवा ने उसके कपोलों को थपथपाया 'विश्वास है तो ऐसा भी हो जायेगा लेकिन अभी देर है। मेरा भी तो कुछ ध्यान रखो।' वह हँसने लगा 'अच्छा, जल्दी-जल्दी अपना सब सामान अलग कराओ। अभी वह समय नहीं आया है।'

मस्तानी उठी और दासियों से सामान अलग करने को कहकर दूसरे कक्ष में चली गई।

पेशवा बड़ी उलझन में पड़ गया। ले जाय तो भी परेशानी न ले जाय तो भी परेशानी। क्या करे क्या न करे ? अन्त में एक बार और समझाने के विचार से वह मस्तानी के कमरे में गया। मस्तानी पर्यंक पर लेटी रो रही थी। पेशवा उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुये उसे अपनी गोद में लिटा लिया। मस्तानी फफक फफक रोने लगी। बाजीराव ने उसके आंचल से आंसुओं को पोंछते हुये मुसकराकर कहा 'जब दो-चार दिनों के अलगाव में यह दशा है तो मेरे न रहने के उपरांत······।' उसने मस्तानी के कपोलों को चूम लिया। 'पगली कहीं की। कोई बड़ी लड़ाई है ? चार-छः दिनों के भीतर लौट आऊँगा। नासिरजंग कब का लड़ने वाला है ? जैसा बाप वैसा बेटा। और यदि मेरे शीघ्र लौटने का कोई समाचार न मिले तो दो चार दिनों बाद जब तुम्हारी तबियत सुधरी हुई मालूम पड़े तो मेरे पास चली आना। बस, अब तो खुश हो, फिर वह मस्तानी के कान के समीप अपने मुंह को सटाकर बोला 'आने वाले का अब अधिक ध्यान रखना पड़ेगा। समझीं। वह हँसने लगा।' मस्तानी गर्भवती थी।

मस्तानी मौन रही।

'चलो हमारी बिदाई की तैयारी करो। जितनी जल्दी जाना होगा उतनी ही जल्दी लौटूंगा।'

मस्तानी को उठना पड़ा। उसने जैसे तैसे पेशवा को विदा किया, परन्तु पेशवा के जाते ही वह फिर फूट फूट कर रोने लगी। पता नहीं उसका अन्तर किसी अज्ञात आशंका से क्यों भयभीत हो उठा था। अब तक के जीवन में यह पहला अवसर था जब बाजीराव उससे अलग हो रहा था।

: ३५ :

काशी बाई जिस अवसर की ताक में थी वह अवसर मिल गया। बड़ी प्रतीक्षा और बहुत समय उपरान्त मिला था। काशीबाई ने तत्काल सैनिकों द्वारा मस्तानी महल घिरवा लिया और स्वयं कुछ सैनिकों को लेकर ऊपर पहुंची। मस्तानी विश्राम कक्ष में लेटी पेशवा के वियोग में व्यथित हो रही थी। कल से न तो उसने खाना खाया था और न जल ग्रहण किया था। सोचने का ऐसा तार बंध गया था जो कहीं से टूटता ही नहीं था। अतीत के चित्र एक-एक करके आंखों के सामने से ओझल होते जा रहे थे। दुख-सुख की ऐसी तन्द्रा में अचानक काशीबाई को अपने सम्मुख देखकर वह भौचक्की-सी रह गई। कुछ क्षणों तक देखती रहने के उपरान्त धीरे से उठती हुई बोली, 'आइये बैठिये।'

काशीबाई ने तीखे स्वर में कहा 'शिष्टाचार का ढोंग न रचो, तुम्हारी चतुराइयों से मैं भली भांति परिचित हूं। तुरन्त इस कमरे को खाली करो।'

मस्तानी अवाक् उसकी ओर देखती रही

'मेरी ओर क्या देख रही है? कमरे से बाहर निकल।'

मस्तानी में अब सजगता आई, 'आपका मतलब मैं समझी नहीं।'

काशीबाई कड़ककर बोली 'अभी मतलब समझाये देती हूं। पहले कमरे से बाहर तो निकल।'

'लेकिन······'

'लेकिन वेकिन,' काशी गरज पड़ी, 'करेगी या निकलेगी। तेरे पेशवा साहब अब यहाँ तेरी रक्षा करने नहीं आयेंगे। जल्द उठ अन्यथा······'

'तो मैं नहीं निकलूंगी। यह मेरा घर है। कोई मुझे निकाल नहीं सकता।' मस्तानी अकड़कर बैठ गई।

'अच्छा!' उसने आवाज़ दी और दो सैनिक अन्दर घुस आये, 'इसे घसीट कर कमरे से बाहर निकालो। काशी ने आदेश दिया।'

सैनिक कुछ झिझके।

'मैं कहती हूं खड़े खड़े मुंह क्या देख रहे हो? इसे निकालते क्यों नहीं?'

मस्तानी ने परिस्थिति समझ ली। इसके पूर्व कि सैनिक हाथ लगावें वह स्वयं उठ खड़ी हुई और बोली 'कहां चलना होगा?'

काशी हँस पड़ी 'बस ! इतने में सब जोश ठण्डे पड़ गये । बड़ी आई है अपना कहने वाली कुलटा !' वह आगे आगे चलने लगी ।

महल के एक सिरे पर एक छोटे से कमरे के सामने काशीबाई आकर रुक गई और मस्तानी को अन्दर जाने का संकेत किया, 'आज से,' वह बोली 'तू इसी कमरे में नज़रबन्द रहेगी ।'

मस्तानी चुपचाप अन्दर चली गई ।

काशीबाई ने फिर छेड़ा । छेड़ती क्यों नहीं ? दिल के गुबार निकालने के लिए इससे बढ़िया अवसर कब मिलता । 'देखा मेरी शक्ति को ? जब मैं अपने पर उतर आती हूं तो मेरे लिए कोई कार्य दुःसाध्य नहीं ।'

'दुःसाध्य न होता तो आज दिन तक पेशवा साहब मेरे पास न होते' मस्तानी ने इतनी देर बाद अब डङ्क मारी ।

काशी उत्तर ढूंढने लगी । मस्तानी ने घाव पर नमक छिड़का 'इन कार्यों से अब पेशवा साहब तुम्हारे नहीं हो सकते काशी बाई । वह हमारे हैं और हमारे ही बने रहेंगे ।'

काशीबाई खिसियानी बिल्ली की भाँति खम्भा नोचने लगीं 'अगर पेशवा साहब हमारे नहीं हो सकते तो अब तेरे भी नहीं हो सकते । इसे गाँठ बाँध ले ।' और बिना आगे बोले उसने मुड़कर समीप खड़े सैनिक से कुछ कहा और चल पड़ी ।

: ३६ :

नासिरजंग को घेरने और परास्त करने में पेशवा को बहुत दिन नहीं लगे । नासिरजंग ने गिड़गिड़ा कर सन्धि के लिए प्रार्थना की । मुन्शी शिवगांव में सन्धि हुई । पेशवा ने उसकी जान बख्श दी । पेशवा लौटा । सैनिकों की इच्छा पर विश्राम हेतु दो चार दिनों के लिए नर्मदा के किनारे रेभर गांव के समीप पड़ाव पड़ गया ।

आज बृहस्पतिवार था । संध्या समय शिकार से लौटने पर पेशवा ने शिंदे को बताया, 'महाप्रतिहार अभी पूना से नहीं लौटा ?' उसने पूछा ।

'अभी नहीं श्रीमन्त किन्तु आज किसी समय तक अवश्य आ जायेगा ।'

बाजीराव सोचने लगा। कुछ समय उपरांत उसकी दृष्टि फिर ऊपर उठी। शिंदे अपनी जगह पर खड़ा था, 'शिंदे !'

'श्री श्रीमन्त !'

'महाप्रतिहार जिस समय भी आवे उसी समय मेरे सामने लाओ।'

बहुत अच्छा महाराज !'

'जाओ।'

शिंदे शिविर के बाहर आ गया। पेशवा फिर सोचने लगा।

अभी रात का तीसरा प्रहर चढ़ना आरम्भ हुआ था कि महाप्रतिहार पूना से लौटा। शिंदे के साथ वह पेशवा की शिविर में पहुँचा। पेशवा जाग रहा था। आहट मिलते ही उसने करवट बदली, 'महाप्रतिहार !' वह उठ बैठा। 'तुम आ गये !! क्या लौटने का ख्याल भूल गये थे ? बेवकूफ ! जो काम जल्दी होना चाहिए वह देर में होता है।' पेशवा को कुछ क्रोध आ गया था।

महाप्रतिहार नतमस्तक मौन खड़ा रहा।

सम्भवत: पेशवा का क्रोध और बढ़ता परन्तु महाप्रतिहार की भावभंगिमा देखकर वह कुछ अन्देशे में पड़ गया। उसकी आवाज़ में नर्मी आई 'वहाँ का समाचार सब ठीक है ? वह स्वस्थ तो हैं ?'

महाप्रतिहार अब भी मौन रहा।

'बोलते क्यों नहीं ?' उसने शिंदे की ओर देखा।

शिंदे ने कुछ हिम्मत की 'महाप्रतिहार से भेंट न हो सकी सरकार श्रीमन्त !'

'भेंट न हो सकी ! क्यों ?'

'बड़ी रानी ने.........' शिंदे आगे कहने से रुक रहा था।

'क्या बड़ी रानी ने ? कुछ कहोगे भी' पेशवा ने डांटा।

'बड़ी रानी ने छोटी रानी को नज़रबन्द कर दिया है श्रीमन्त !'

'कहां ?'

'उसी महल की एक कोठरी में।'

'क्यों ?' उसने महाप्रतिहार की ओर देखा।

'कुछ मालूम न हो सका महाराज !' महाप्रतिहार ने उत्तर दिया।

'काशीबाई से भेंट की थी ?'

'जी ! कारण भी पूछा था। इस पर उन्होंने डांटकर कहा कि इन मसलों पर मुझे पूछ ताछ करने की आवश्यकता नहीं और मुझे शीघ्र लौट जाने का आदेश दिया।' महाप्रतिहार ने ढाढ़स कर के सारी बातें बतला दीं।

कुछ क्षणों तक बाजीराव आंखें फाड़ महाप्रतिहार को देखता रहा। तदुपरान्त धीरे-धीरे गावतकिये के सहारे चौकी पर लेट गया। उसने करवट बदली। 'तुम लोग जाओ।' उसने आज्ञा दी।

रात गुज़र गई। पेशवा करवटें बदलता रहा। क्या सोचता रहा कुछ कहा नहीं जा सकता। सबेरा हुआ। दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर फौरन शिकार के लिये निकल पड़ा। दिन ढले तक वह योंही बिना किसी अहेर के घोड़ा लिये जंगल में दौड़ता रहा। क्यों दौड़ता रहा इसे उसके सैनिक भी न समझ पाये। फिर बिना कुछ बोले अनायास वह पड़ाव की ओर लौट पड़ा। किसी को कुछ पूछने का साहस न हो सका।

सूर्यास्त के उपरान्त प्रत्येक को यह सुनकर महान आश्चर्य हुआ कि पेशवा साहब को ज्वर आ गया। महान आश्चर्य की बात थी। इतने बड़े जीवन में बीमार पड़ना तो दूर पेशवा को थकान तक अनुभव करते अभी तक किसी ने नहीं देखा था। रावटी के बाहर सेनागोपी, सेना नायकों तथा सरदारों की भीड़ इकट्ठा होने लगी परन्तु अन्दर जाने के लिये किसी को अनुमति नहीं थी। सब लोग राजवैद्य की प्रतीक्षा में थे। थोड़ी देर बाद राजवैद्य निकले। लोगों ने घेर लिया। राजवैद्य का चेहरा उतरा हुआ था। उन्होंने धीरे से बतलाया 'श्रीमन्त ने औषधि खाने से इन्कार कर दिया है।'

'क्यों ? तबियत कैसी है ?' बगल में खड़े एक सरदार ने पूंछा।

'ज्वर का प्रकोप बढ़ रहा है। औषधि न लेने से इसका रूप भयंकर हो सकता है। ऐसे लक्षण विदित हो रहे हैं।'

'परन्तु औषधि लेने से क्यों नाहीं कर दिया राजवैद्य ?'

'क्या बताऊं भाई। होनहार प्रबल है। श्रीमन्त की व्यथा.............'
वह आगे न कह सका और आंखे पोछता धीरे धीरे भीड़ से बाहर हो गया।

लोग आपस में फुसफुसाने लगे। कुछ ही क्षण उपरान्त शिन्दे निकला और पेशवा के आदेशानुसार प्रत्येक को अपने अपने डेरे में जाने को कहा। पेशवा का बुखार बढ़ रहा था। लोग चले गये। शिन्दे फिर अन्दर आकर पेशवा के पास बैठ गया।

अधी रात का समय होगा। पेशवा बड़ी विचित्र उलझन में तख्त पर करवटें बदल रहा था। कभी कभी अस्पष्ट मुंह से बर्राता हुआ रोने सा लगता। उसकी दशा क्षण प्रतिक्षण बिगड़ती दिख रही थी। शिन्दे का हृदय

किसी आशंका से कांप उठा। उसने बाहर आकर महाप्रतिहारी से सलाह की 'तो बड़ी रानी के पास सूचना भेज दूं ?' महाप्रतिहार ने पूछा।

'मेरे विचार से भेज देना ही उपयुक्त होगा। श्रीमन्त की हालत बिगड़ती जा रही है।'

'अच्छी बात है, भेजे दे रहा हूं।'

ढलती रात में चार अश्वारोही पूना के पथ पर हवा से होड़ लगाते चले जा रहे थे।

: ३७ :

जल बिनु मीन प्यासी—की दशा मस्तानी की हो रही थी। वह तलफ रही थी। उसका हृदय केवल इसलिये विंध रहा था कि पेशवा ने अपने विषय में अब तक कोई समाचार नहीं भेजा ? यद्यपि उसे विश्वास था कि पेशवा से ऐसी त्रुटि नहीं हो सकती किन्तु प्रत्यक्ष को क्या प्रमाण। यह हो तो नहीं सकता, लेकिन ऐसा हो गया। पेशवा के विषय में उसे अभी तक कोई सूचना नहीं थी। वह बहुत सोचती, दिन रात सोचती, सोचते सोचते उसने कई दिन और कई रातें गुजार दीं लेकिन न कोई हल निकला और न पेशवा के समाचार ही मिले। अब उसके पास रोने के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं था। उसे अब संसार की किसी वस्तु की चाह नहीं थी। यदि चाह थी तो केवल पेशवा को देखने की। वह पेशवा को एक बार फिर देख लेना चाहती थी पर चाह पूरी कब होती है ? धीरे धीरे एक एक करके दिन बीतते जा रहे थे और वह उस काल कोठरी में बन्द पेशवा के वियोग में रो रो कर जीवन से छुटकारा पाने के प्रयत्न में तल्लीन थी। उसे अब जीवन नहीं मृत्यु प्रिय थी।

आज सबेरे से उसकी दाईं आंख फड़कने लगी थी। उसकी पीड़ा और बढ़ गई। रही सही आशा जाती रही। वह बार बार आंख को मलती। मन को नाना प्रकार से सान्त्वना देने की चेष्टा करती रही। दोपहरी के लगभग

दासी भोजन लेकर आई। यद्यपि मस्तानी ने खाना पीना कई दिनों से बन्द कर रखा था फिर भी काशी बाई के आज्ञानुसार भोजन दोनों समय आता अवश्य था। भोजन एक ओर रखकर दासी मस्तानी के समीप बैठ गई और धीरे से बोली 'सम्भव है आपको बतलाया न जाय। श्रीमन्त की तबियत बहुत खराब है।'

'क्या श्रीमन्त आगये?' उसने बड़ी उत्सुकता से पूंछा।

'आये नहीं। वहीं रेमर में।'

'रेमर में। मैं कुछ समझी नहीं बाई।' मस्तानी को विश्वास नहीं हो रहा था।

'रेमर गांव में श्रीमन्त विश्राम हेतु रुके थे, अनायास उनको ज्वर आगया।'

'तुम्हें किसने बताया?'

'नगर में बड़ी हलचल है, श्रीमन्त की दशा अच्छी नहीं है।'

मस्तानी के नेत्रों से आंसू गिरने लगे। दासी ने धैर्य और गणपति पर भरोसा रखने के लिये कहा। मस्तानी मौन रही। थोड़ी देर बाद जब दासी जाने लगी तो अनायास मस्तानी ने उसके पैरों पर अपना मस्तक रख दिया। 'रानी जी,' उसने घबड़ा कर पैर खींच लिये 'ऐसा अनर्थ न कीजिये।' वह बैठ गई।

'मेरी एक विनती है बाई,' उसने हाथ जोड़े 'मैं पेशवा साहब को देखना चाहती हूं। मुझे किसी प्रकार इस महल से बाहर निकाल दो।' आंसू उसकी आंखों से बह रहे थे।

दासी बड़ी उलझन में पड़ गई। उसने कुछ स मय सोचने के उपरांत पूंछा 'पर आप रेमर तक पहुंच सकेंगी?'

'बड़ी आसानी से, सिर्फ मुझे महल से बाहर निकाल दो बाई। यह उपकार जीवन पर्यन्त तक न भूल सकूंगी।' वह फिर उसके पैरों पर गिर पड़ी।

दासी ने सन्त्वना देकर उठाया और विश्वास दिलाया कि संध्या तक वह कुछ न कुछ प्रबन्ध अवश्य करेगी। वह चली गई।

गोधूलि की बेला समाप्त हो गई थी और दीया-बाती का जून हो चला था, ठीक ऐसे ही समय दासी आई। उसने वस्त्र उतारते हुये कहा, आप मेरे कपड़े पहिनकर जल्द से जल्द महल के बाहर हो जांय। अवसर उपयुक्त है।'

'और तुम,' मस्तानी ने पूंछा ।

'मैं आपके कपड़े पहिनकर यहीं बैठ रहूंगी । जल्दी कीजिए, समय थोड़ा है ।' दासी का त्याग महान् था ।

मस्तानी ने झटपट कपड़े बदले । एक नवीन आशा से मन आल्हादित हो रहा था । उसने दासी को गले लगाया और सबकी आंखों में धूल झोंकती हुई महल के बाहर निकल गई । नगर से निकल कर एक वृक्ष के नीचे कुछ देर तक उसने दम लिया और तब अपने प्रीतम के मार्ग पर चल पड़ी । जिसने हफ्तों से अन्न न ग्रहण किया हो, जो स्वयं गर्भवती हो, जिसे जीवन में नंगे पांव चलने का अभ्यास न हो, वही स्त्री इस समय कोसों दूर रेमर ग्राम के पथ पर दौड़ती चली जा रही हो— क़यास में न आने वाली बात जान पड़ती है । पर प्रेम को पाने में, पिया को अपनाने में जो परमानन्द है और उस परमानन्द से जिन शक्तियों का संचार होता है उन शक्तियों को शायद असम्भव को भी सम्भव करने में विलम्ब नहीं होता । प्रमाण में मस्तानी इस समय सामने थी ।

मस्तानी पेशवा से मिलने जा रही थी, उलाहना देने जा रही था, कुछ खरी-खोटी सुनाने जा रही थी, सेवा-सुश्रूषा करने जा रही थी । फिर उनके चरणों में अपने को सौंप कर कभी अलग न होने की कसम खिलाने और खाने जा रही थी । बड़ी-बड़ी कल्पनायें और बड़ी भावनायें थीं । कितनी पूरी होंगी और कितनीं अधूरीं रह जायेंगीं—भगवान जाने ।

मस्तानी अभी बहुत दूर नहीं जा सकी होगी कि उसे घोड़ों की टापों की आहट मिली । आवाज समीप होती गई । वह सड़क के किनारे एक ओर हट कर खड़ी हो गई । निकलते हुये घुड़सवारों का अन्तिम घुड़सवार अनायास रुक गया । उसने उतर कर मस्तानी को समीप से निहारा । उसने आवाज दी । सब लौट आये । मस्तानी का हृदय कांप उठा । फिर भी उसने दृढ़ स्वर में पूंछा, 'आप सब क्या चाहते हैं ?'

नायक ने मस्तानी को पहिचान लिया था । उसने बतलाया, 'बड़ी रानी के आदेशानुसार हम लोग आप ही की खोज में निकले थे । आपको वापस चलना होगा ।' नायक ने शिष्टतापूर्वक व्यवहार किया ।

मस्तानी सब कुछ समझ गई । लौटने के अतिरिक्त और कुछ चारा नहीं था । इसी में बुद्धिमानी थी । वह चुपचाप एक घोड़े पर जा बैठी । अन्य अश्वारोही उसे घेर कर चलने लगे ।

काशीबाई प्रतीक्षा में बैठी ऊंघ रही थी जब उसे मस्तानी के पकड़ कर

आने की सूचना दी गई। वह हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई 'तो पकड़ गई कुलटा ?' वह दांत पीसती चली।

काशी बाई के सामने आते ही मस्तानी उसके पैरों पर गिर पड़ी और सिसक-सिसक कर कहने लगी 'मुझे एक बार पेशवा साहब के दर्शन करा दीजिये रानी जी केवल एक बार, फिर जो दण्ड देना चाहें दे लें। मुझे सब स्वीकार है। आप जैसा कहें मैं सब कर सकती हूं बस एक बार पेशवा के दर्शन करा दीजिये।' आरत के बस होकर मनुष्य सभी कुछ कर लेता है।

काशी बाई के पैरों ने उसे ठोकर मार दिया।

: ३८ :

जिस समय काशीबाई रेमर ग्राम पहुंची उस दिन इतवार था। सूर्यास्त हो चला था जब पत्नी ने पति के डेरे में प्रवेश किया। पेशवा शान्त लेटा हुआ था। सम्भवतः तापक्रम अधिक बढ़ गया था। शिन्दे और महा प्रतिहार एक ओर आंसू बहा रहे थे। राजवैद्य भी एक ओर उदास बैठे हुये थे। काशीबाई पेशवा के शिर पर हाथ रखती हुई सिरहाने बैठ गई। उसकी भी आंखें डबडबा आई थीं। कोमल हाथों के स्पर्श होते ही पेशवा के मुंह से निकला 'मस······ता······।' उसकी आंखें खुलीं 'अ······छा तुम हो।' उसने आंखें बन्द कर ली 'कहो, कैसे आना हुआ ? घाव पर नमक छिड़कना बाकी रह गया होगा क्यों ? चिन्ता करने की जरूरत नहीं बहुत थोड़ी देर का मेहमान हूं।'

'महाराज !' काशीबाई रोती हुई उसके पैरों पर लेट गई।

पेशवा जैसे बेहोशी में कहता चला जा रहा था 'काशी, तुमने मेरी जान ली सो तो ली ही; लेकिन देश का तुमने बड़ा अहित किया। अत्याचारियों से समाज मुक्त न हो सका। आने वाली पीढ़ियां······।' वह कहते-कहते रुक गया। शायद आगे बोलने के लिये शक्ति इकट्ठा करनी होगी।

घड़ी-दो-घड़ी और चार घड़ी बीती। रात समाप्त होने को आई। पेशवा

मौन लेटा रहा । श्वासें अभी चल रही थीं । उसने करवट ली, 'महाप्रतिहार,' उसके मुंह से निकला । बोलने में उसे कठिनाई हो रही थी ।

'जी श्रीमन्त ।' वह चौकी के समीप आया ।

'मस्तानी अब नहीं आ सकेगी न ? खैर !' उसने फिर करवट ली और सीधा हो गया । प्राण पखेरू उड़ गये हाहाकार मच गया ।

अचानक महल में रोने की आवाज सुन कर मस्तानी चौंकी । वह बाहर की ओर दौड़ी । सामने एक दासी जाती हुई दिखलाई पड़ी । उसने बुलाकर रोने का कारण पूंछा । दासी आंखें पोंछने लगी 'श्रीमन्त······।'

'क्या श्रीमन्त ?' मस्तानी का हृदय ऐंठने लगा ।

'श्रीमन्त नहीं रहे रानी जी ।'

'क्या·········'

दासी ने सिर हिलाकर आगे के लिये पैर उठाया ही था कि मस्तानी मुंह के बल धड़ाम से गिर पड़ी । दासी घबड़ा गई । उसने झटपट उठाना चाहा किन्तु वहाँ कुछ हो तब तो । उसकी आत्मा तो कब की पेशवा के पास पहुंच चुकी थी ।

* * * *

पूना से दस कोस पर पबाल ग्राम में मस्तानी के मजार पर एक लूला फकीर प्रायः रात में इबादत करता हुआ राहगीरों को दिखलाई पड़ता था । जानकार उसे अहमद के नाम से बतलाते थे ।

भारती - प्रतिष्ठान के अभिनव प्रकाशन

उपन्यास-साहित्य

(१)	बेवसी का मजार—श्री प्रताप नारायण श्रीवास्तव	१०)
(२)	विषमुखी — ,, ,,	५)
(३)	वन्दना — ,, ,,	८)
(४)	विसर्जन — ,, ,,	७)
(५)	पेशवा की कञ्चनी—श्री उमाशङ्कर	४॥)
(६)	सम्राट नीरो —अनु० रमेशचन्द्र अवस्थी	४)

आलोचना-साहित्य

(८)	रोमाँसवादी साहित्य शास्त्र—डा० रवीन्द्रसहाय	।।।)
(९)	प्रेमचन्द : उपन्यास और शिल्प—प्रो० हरस्वरूप	५)

काव्य-साहित्य

(१०)	करुणा—कादम्बिनी—आचार्य श्री 'सनेही'	२)
(११)	कसक—श्री हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'	५)
(१२)	मधुरिमा— ,, ,, ,,	३)
(१३)	सुषमा — ,, ,, ,,	२)
(१४)	प्रेमसन्देश— ,, ,, ,,	२॥)
(१५)	करुणा — ,, ,, ,,	१॥)

एकाधिकारी वितरक :—

'ग्रन्थ-कुटीर'

पुस्तक प्रकाशक तथा विक्रेता

पी० रोड, कानपुर